श्रील प्रभुपाद

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य

श्रील प्रभुपाद

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य

रवीन्द्र स्वरूप दास

इस्कॉन
जी.बी.सी प्रेस

नमः ॐ विष्णु-पादाय कृष्ण-प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिवेदान्त-स्वामिन् इति नामिने।।

मैं कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को सादर प्रणाम करता हूँ, जो दिव्य नाम की शरण लेने के कारण इस पृथ्वी पर भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।

नमस्ते सारस्वते देवे गौर-वाणी प्रचारिणे।
निर्विशेष-शून्यवादी-पाश्चात्य-देश-तारिणे।।

हे गुरुदेव! सरस्वती गोस्वामी के दास! आपको मेरा सादर विनम्र प्रणाम है। आप कृपा करके श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार कर रहे हैं तथा निराकारवाद एवं शून्यवाद से व्याप्त पाश्चात्य देशों का उद्धार कर रहे हैं।

विषय-सूची

श्रील प्रभुपाद पद समिति के सदस्य

अक्रूर दास

आत्माराम कृष्ण दास

भक्त प्रिया देवी दासी

भक्ति चारु स्वामी

भक्ति वैभव स्वामी

चैतन्य चन्द्रोदय दास

गोपाल कृष्ण गोस्वामी

हरि शौरि दास

हृदयानंद गोस्वामी (पूर्व सदस्य)

मधु सेवित दास

मालती देवी दासी (पूर्व सदस्य)

रवीन्द्र स्वरूप दास

श्रद्धादेवी दासी

सुरेश्वर दास

वासुदेव दास

वीरबाहु दास

विष्णु मूर्ति दास

यदुवर दास

इस्कॉन के प्रशासनिक आयोग (जी.बी.सी.) की कार्यकारिणी समिति द्वारा की गई टिप्पणी

'श्रील प्रभुपादः इस्कॉन के संस्थापकाचार्य'– रवीन्द्र स्वरूप दास द्वारा रचित यह कृति, इस्कॉन के प्रशासनिक आयोग (जी.बी.सी.) द्वारा आधिकारिक रूप से समर्थित है।

जी.बी.सी., इस्कॉन के समस्त भक्तों एवं मित्रों से अनुरोध करती है कि वे इस कृति पर विशेष सावधानीपूर्वक गहरा अर्थात् गंभीरतापूर्वक पूर्ण ध्यान दें। ऐसा करने से अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में श्रील प्रभुपाद की अद्वितीय भूमिका और उनके पद के प्रति आभार व प्रशस्ति तथा हमारी सामूहिक समझ और अधिक विस्तृत हो जाएगी।

श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण व चैतन्य महाप्रभु के केवल संदेश को ही हम तक नहीं पहुँचाया, जबकि यह भी अपने आपमें एक गौरवपूर्ण कठिन कार्य है, अपितु श्रील प्रभुपाद ने हमारे संस्थापकाचार्य के रूप में "संपूर्ण मानव समाज का पुनः आध्यात्मिकरण" करने के प्रयोजन से, विश्वव्यापी समुदाय के रूप में, इस्कॉन के आधारभूत सिद्धांतों, कार्यों तथा भविष्य निरूपण (भविष्य के लिए बड़ी योजनाएँ बनाने की क्षमता) की रचना भी की।

श्रील प्रभुपाद की भूमिका, जैसा कि आप पढ़ेंगे, अविरत है। प्रत्येक भक्त के जीवन में आज भी तथा भविष्य में भी अनेक शताब्दियों तक उनकी उपस्थिति का अनुभव होते रहना चाहिए।

यह समझना कि कैसे श्रील प्रभुपाद हमारे जीवन तथा हमारे समाज के केन्द्र बिन्दु हैं और यह भी जानना कि उस परम आवश्यक भूमिका में उन्हें

कैसे रखा जाये, यही इस मूल रचना का उद्देश्य है। जैसा कि भक्ति चारु स्वामी प्रस्तावना में लिखते हैं, "यह पुस्तक बिना रुचि के, अनौपचारिक रूप से पढ़ने के लिए नहीं है, अपितु कार्यान्वित करने के लिए है, इस पर अमल किया जाना चाहिए।"

जी.बी.सी. कार्यकारिणी समिति

दिसम्बर 2013

आमुख

श्रील प्रभुपाद निस्संदेह श्रीचैतन्य महाप्रभु की भविष्यवाणी को परिपूर्ण करने के लिए उनके द्वारा भेजे गए महापुरुष थे। "मैं संकीर्तन आन्दोलन का उद्‌घाटन करने के लिए अवतरित हुआ हूँ। मैं इस विश्व की समस्त पतित आत्माओं का उद्धार करूँगा... संसार के प्रत्येक नगर व गाँव में मेरा नाम उच्चारण करने वाले संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार होगा" (चैतन्य भागवत, अन्त्य 4.120, 126)

गौड़ीय परिप्रेक्ष्य में सही दृष्टिकोण से श्रील प्रभुपाद की अद्वितीय भूमिका को समझने के लिए हमें वापस बीते हुए कल में यात्रा करनी चाहिए तथा विस्तृत एवं गहन जानकारी प्राप्त करनी चाहिए कि कैसे चैतन्य महाप्रभु की भविष्यवाणी को परिपूर्ण करने की उनकी योजना क्रमशः प्रकट हो रही है।

गया से वापस लौटने पर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपना नाम-संकीर्तन मिशन (प्रचार योजना) प्रारम्भ किया तथा नाम प्रेम का वितरण करते समय "श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों ने कभी यह विचार नहीं किया कि कौन सुपात्र है और कौन नहीं है, इसका वितरण कहाँ किया जाए और कहाँ नहीं। उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। जहाँ भी अवसर मिला, पंचतत्त्व के सदस्यों ने भगवत्प्रेम का वितरण किया।" (चैतन्य चरितामृत, आदि-लीला 7.23)

नाम प्रेम की यह बाढ़ समस्त दिशाओं में उमड़ पड़ी और प्रबुद्ध प्रचारकों जैसे छह गोस्वामी, श्रीनिवास आचार्य, नरोत्तम दास ठाकुर तथा श्यामानन्द प्रभु इत्यादि की छत्रछाया में इस संसार को निरन्तर आशीर्वाद देती रही।

दुर्भाग्यवश श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके इन शक्ति-प्रदत्त पार्षदों के अप्रकट होने के उपरान्त गौड़ीय वैष्णववाद के संसार पर घोर अंधकार युग

उतर आया। कलि के प्रभाव से अनेक अपसम्प्रदाय व असामान्य पंथों ने अपने अनैतिक भौतिकवादी सिद्धांतों, मतों एवं प्रथाओं द्वारा कृष्णभावनामृत की चैतन्य महाप्रभु की शुद्ध प्रस्तुति पर पूर्णरूप से ग्रहण लगा दिया और उन्होंने ऐसा उनके ही नाम से किया। शीघ्र ही उनकी शिक्षाएँ अनैतिकता, पर आधारित सिद्धांतों तथा असामाजिक या समाज विरोधी तत्त्वों के रूप में पहचानी जाने लगीं। फलस्वरूप भारतीय समाज के सभ्य व शिक्षित लोगों में चैतन्य महाप्रभु के विरुद्ध अत्यधिक विद्वेष विकसित हो गया। वे लोग उनसे अत्यधिक विमुख हो गए। यह अंधकार युग लगभग 250 वर्षों तक निरन्तर कायम रहा।

चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन को पुनः जाग्रत करने तथा एक बार फिर गौड़ीय आकाश को प्रकाशित करने के उद्देश्य से चैतन्य महाप्रभु ने तब अपने एक घनिष्ठ पार्षद भक्तिविनोद ठाकुर को इस संसार में भेजा। दिव्य शक्तियों के अधिकारी भक्तिविनोद ठाकुर ने कृष्णभावनामृत की चैतन्य महाप्रभु की प्रस्तुति का विरोध करने वाले समस्त अनधिकृत व अप्रामाणिक सामान्य दर्शनों को परास्त करने के लिए अथक रूप से लिखा। अपने अथक व समर्पित लेखन कार्य द्वारा उन्होंने उस समय के समस्त अधार्मिक दर्शनों का रहस्य खोल दिया और एक बार फिर चैतन्य महाप्रभु का परम मंगलमय व दया रूपी मार्ग अर्थात् उनके नाम संकीर्तन मिशन का रहस्य इस जगत के समक्ष प्रकट कर दिया। ये लेख बाद में चैतन्य महाप्रभु की भविष्यवाणी को परिपूर्ण करने के कार्य को सक्रिय बनाने के लिए, श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती की संस्थात्मक व सुव्यवस्थित आधार वाली योजना के लिए दार्शनिक नींव निर्मित कर देंगे। भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा चैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थान की पुनः खोज करना तथा चैतन्य महाप्रभु की यह इच्छा कि संपूर्ण विश्व में नाम संकीर्तन का प्रसार हो, इसकी अनुभूति करने के लिए उनके "नामहट्ट" के रूप में भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रूपरेखा दिया जाना, श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रति उनके दृढ़ विश्वास का एक अत्यन्त स्पष्ट, असाधारण, आश्चर्यजनक व उल्लेखनीय संकेत था। फिर भी वे जानते थे कि संपूर्ण विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रसार करने का यह अत्यन्त भारी भरकम व कठिन कार्य पूरा करने के लिए,

अनेक पीढ़ियों तक, हजारों लोगों की सामूहिक संलिप्तता की आवश्यकता पड़ेगी। यह केवल एक व्यक्ति द्वारा संपन्न कार्य से न तो पूरा हो सकता था और न कभी होगा- इसके लिए एक दिव्य संस्था की परम आवश्यकता थी।

भगवान् जगन्नाथ से उनके द्वारा उत्साहपूर्वक की गई प्रार्थनाओं का उनको जवाब मिल गया था और श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती, गौड़ीय मिशन के रूप में उनके रूपरेखा को व्यावहारिक आकार देने के लिए उनके पुत्र के रूप में प्रकट हो गए। पन्द्रह वर्षों की छोटी अवधि में ही श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का संपूर्ण भारत में प्रसार कर दिया तथा अपने मिशन में सहायता प्राप्त करने हेतु, उस समय के अनेक प्रकाशमान व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इस अवधि के दौरान भारत में, चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए समर्पित चौंसठ मठों की स्थापना की गई।

श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने अपने द्वारा इस संसार को छोड़कर चले जाने के पश्चात् जोरदार व जोशभरा प्रचार कार्य जारी रखने के लिए अपनी संस्था के महत्त्व को मान्यता प्रदान की। उन्होंने अपने सर्वोत्तम व महत्त्वपूर्ण शिष्यों को बलपूर्वक तथा अत्यन्त निष्ठापूर्वक निर्देश दिया कि उनके गौड़ीय मिशन का एक प्रशासनिक आयोग (गवर्निंग बॉडी) द्वारा संचालन व रख-रखाव किया जाए। आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने किसी को भी अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में नामांकित नहीं किया। वे 1 जनवरी, सन् 1937 को इस संसार को छोड़कर चले गए और लगभग तुरन्त ही गौड़ीय मिशन के अन्दर असहमति व झगड़ा होना प्रारम्भ हो गया। अतिशीघ्र वह संस्था जो सदैव श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के शुद्ध तथा निर्भीक प्रचार के लिए विख्यात थी, वह झगड़ों व कोर्ट-कचहरी के मुकदमों के लिए प्रसिद्ध हो गई। दो प्रतिस्पर्धी गुट आचार्य के पद के लिए लड़ने लगे तथा अनेक वरिष्ठ शिष्यों ने असंतोष व अरुचि के कारण अनच्छिुक होकर संस्था को छोड़ दिया। अनेक केन्द्रों, अनेक प्रेस तथा एकीकृत नेतृत्व के अंतर्गत कार्य करने वाले हजारों भक्तों से बनी संपूर्ण -भारत की संस्था के रूप में गौड़ीय मिशन की एकीकृत संस्था बंद हो

गई। स्वामित्व व प्रतिष्ठा की निराधार धारणा ने श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती के आदेश पर ग्रहण लगा दिया तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का प्रसार करने हेतु विश्वव्यापी आन्दोलन विकसित करने का उनका मिशन धीरे-धीरे रुक गया।

घटनाओं के इस अतिदुखद, असामान्य व अप्रत्याशित परिवर्तन के कारण हमारे कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद का हृदय विदीर्ण हो गया था, किन्तु उनके कार्यों से यह सुस्पष्ट था कि उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु के हृदय व मिशन को पूर्णतः समझ लिया था।

1. जैसे ही कुछ न्यूयार्क के अनुयायियों ने उनके संदेश को हृदय से स्वीकार किया तो उन्होंने कानूनी तौर पर अपनी संस्था को कानून-सम्मत संघ के रूप में परिणत कर दिया। उन्होंने इसको अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का नाम दे दिया तथा कानूनी तौर पर इसके सात उद्देश्यों को प्रस्तुत किया। यह सब सन् 1966 में ही हो गया था।

2. श्रील प्रभुपाद ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के मिशन को निरन्तर जारी रखने के लिए तथा इस्कॉन की दिव्य संपदा को सुरक्षित करने के लिए प्रशासनिक आयोग (जी.बी.सी. अर्थात् गवर्निंग बॉडी कमीशन) की स्थापना की। उन्होंने अत्यन्त व्यवस्थित रीति से, योजनानुसार तथा अत्यधिक बलपूर्वक अपने वरिष्ठ अनुयायियों को निर्देश दिया: "आप लोग वही गलती मत कीजियेगा जो मेरे गुरु महाराज के अप्रकट होने के पश्चात् मेरे गुरु भाइयों ने की थी। इस संघ का सामूहिक रूप से जी.बी.सी. के निर्देशन में संचालन कीजियेगा।"

3. दृढ़ दार्शनिक एवं संस्कृति पर आधारित, इस्कॉन की एक दिव्य मिशन के रूप में सुरक्षा करने हेतु उन्होंने अत्यन्त सतर्कता व सावधानी से तथा अथक कठोर परिश्रम से, श्रीचैतन्य महाप्रभु की अत्यधिक महत्वपूर्ण व उत्तम शिक्षाओं का अनुवाद किया और भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम् व चैतन्य-चरितामृत के रूप में उनकी

व्याख्या की। उन्होंने बलपूर्वक कहा कि उनकी पुस्तकें उनके कृष्णभावनामृत आन्दोलन तथा इस्कॉन संस्था का आधार हैं।

4. उन्होंने अपने गुरु महाराज के समान अपने इस्कॉन को कोई नाम नहीं दिया और न ही किसी क्रमानुयायी या उत्तराधिकारी का चयन किया, अपितु वे चाहते थे कि उनके शिष्य गवर्निंग बॉडी की सहायता से, सामूहिक रूप से मिलकर संस्था का संचालन करें।

जब मैं उनका निजी सेवक था तब मैंने अनेक बार ध्यान दिया कि वे आग्रह किया करते थे कि किसी भी मुद्रित लेख में, संघ के नाम इस्कॉन के नीचे, उपाधि संस्थापकाचार्य तथा उनका पूरा नाम प्रकाशित होना चाहिए। उस समय मैं बहुत अपरिपक्व व अनुभवहीन था और प्राय: चकित होता था, "श्रील प्रभुपाद इतने विनम्र एवं उन्नत वैष्णव हैं, फिर वे इस बात के लिए निरन्तर इतना आग्रह क्यों करते हैं?" मैंने कभी भी यह बात श्रील प्रभुपाद के समक्ष निश्छल भाव से व्यक्त नहीं की, परन्तु यह विचार मुझे निरन्तर किंकर्तव्यविमूढ़ करता रहा, किन्तु धीरे-धीरे समय के साथ, उनकी दिव्य कृपा से मैंने उनके अभिप्राय को समझना प्रारम्भ कर दिया। पदबंध "संस्थापकाचार्य" केवल एक उपाधि नहीं है अपितु इस घटिया अंधकारपूर्ण कलियुग में, इस संपूर्ण विश्व में बद्ध आत्माओं की जनसमुदाय-मुक्ति के प्रति समर्पित संस्था की रक्षा करने, उसे सुरक्षित रखने तथा उसे दीर्घायु प्रदान करने की योजना बनाने हेतु एक प्रणाली है।

महान वैष्णव निष्ठावान अनुयायी जैसे श्रीमध्वाचार्य व श्रीरामानुजाचार्य ने इस प्रणाली को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया।

प्रत्यक्ष रूप से इस्कॉन में इस प्रणाली को पूर्णरूपेण कार्यान्वित करना, श्रीचैतन्य महाप्रभु के भविष्यकथन को सफलतापूर्वक परिपूर्ण करने की तुलना में निर्णायक रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैंने इस अनुभूति को अपने अनेक वरिष्ठ गुरुभाइयों के साथ बाँटा और यह जानकर मैं उत्साह से भर गया कि श्रील प्रभुपाद ने उन्हें उसी विस्तृत व गहन जानकारी अर्थात् पूर्ण ज्ञान से अभिमंत्रित किया।

फिर सन् 2006 में जी.बी.सी. बॉडी ने विभिन्न युक्तिपूर्ण युद्धनीतिक ध्येय प्राप्त करने तथा उसकी योजना बनाने के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण किया। ऐसी ही एक समिति है श्रील प्रभुपाद की पद समिति (एस पी पी सी) जिसका मिशन है, श्रील प्रभुपाद को शाश्वत रूप से इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में तथा समस्त इस्कॉन के भक्तों के लिए पूर्व प्रतिष्ठित शिक्षा गुरु के रूप में स्थापित करने के लिए प्रचलित प्रयासों में सहायता प्रदान करना तथा नई शुरुआत करके सशक्त स्थिति विकसित करना। यह पुस्तक एस पी पी सी की प्रथम कार्यवाही है।

श्रीमान् रवीन्द्र स्वरूप प्रभु जो निस्संदेह ही इस्कॉन के अत्यन्त प्रतिभाशाली व कुशाग्र बुद्धि विचारकों तथा लेखकों में से एक हैं, उन्होंने यह पुस्तक लिखी। जी.बी.सी. के समस्त सदस्यों तथा अनेक वरिष्ठ भक्तों ने इसका गंभीरतापूर्वक और परिश्रमपूर्वक अत्यन्त सावधानी से, सूक्ष्म परीक्षण किया।

इस पुस्तक का विस्तृत व सुविचारित अध्ययन करके, अत्यन्त सावधानी से और परिपूर्णतापूर्वक अनुसंधान किया गया है। यह पुस्तक शास्त्रों तथा ऐतिहासिक सत्यों पर आधारित है। यह स्वभाव में शैक्षिक है और यह एक ऐसी आधारशिला प्रदान करती है, जिसपर हम श्रील प्रभुपाद की स्थिति की, इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में दृढ़तापूर्वक व अत्यन्त व्यावहारिक रूप में स्थापना करने के उद्देश्य से, शिक्षा की सर्वांगीण संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं। निस्संदेह, शुद्ध कृष्णभावनामृत किसी तकनीक को अंगीकार नहीं करता। इसका एकमात्र आधार विनम्रता तथा पूर्ण शरणागति है। यही वह भाव है, जिस भाव से हम श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रील प्रभुपाद तथा उनके समस्त भक्तों को यह प्रकाशित पुस्तक अर्पित करते हैं।

कृपया इस बात पर ध्यान दें कि यह पुस्तक अनौपचारिक रूप से पढ़ने के लिए नहीं है, अपितु इस पर अमल करना है। यदि हम ऐसा करते हैं तो श्रील प्रभुपाद के साथ हमारा व्यक्तिगत तथा हमारे सामूहिक सम्बन्ध असीमित रूप से सशक्त होते जायेंगे और सफलता की ओर अग्रसर होंगे। हमें अत्यन्त व्यावहारिक रूप से बोध होगा कि हमारे परम प्रिय

संस्थापकाचार्य समय के अधीन नहीं हैं। वे श्रीचैतन्य महाप्रभु की दया रूपी दिव्य बाढ़ तथा कृष्ण प्रेम के नित्य सहायक हैं। उनका हृदय पिघलता है और बिना किसी प्रतिबंध या रुकावट के बहता है। उनका हृदय पिघलता है और बिना किसी प्रतिबंध या रुकावट के बहता है- किसी भी व्यक्ति के लिए तथा उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए जो उनकी शिक्षाओं और नाम संकीर्तन मिशन में थोड़ी सी भी रुचि दिखाता है।

कृष्णप्रेम से संपूर्ण विश्व को आप्लावित करने की श्रीचैतन्य महाप्रभु की योजना में अगले महत्वपूर्ण कदम को कार्यान्वित करने के लिए- हर समय श्रील प्रभुपाद को दृढ़तापूर्वक व अत्यन्त व्यावहारिक रूप से इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में स्थापित करने के लिए हम विनम्रतापूर्वक आपका दया पूर्ण व सक्रिय समर्थन, सहायता तथा प्रोत्साहन प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

आपका अत्यधिक धन्यवाद है।

श्रील प्रभुपाद की सेवा में आपका

भक्तिचारु स्वामी

वृन्दावन, भारत, नवम्बर 2013
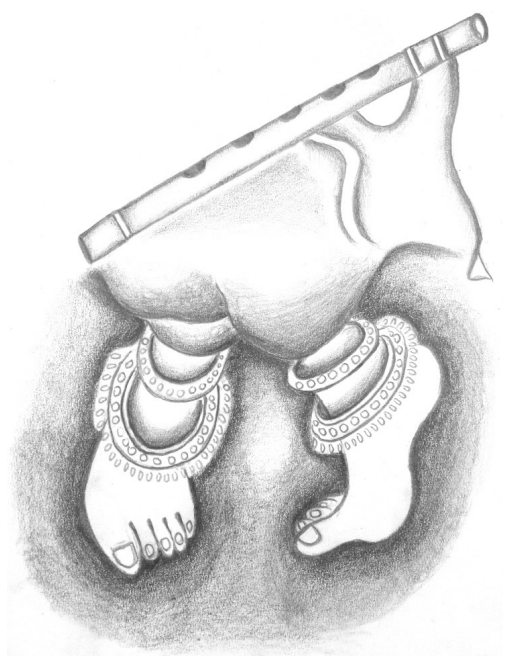
प्रस्तावना

जो आपके हाथ में है- या आपके स्क्रीन पर है यह कृति सन् 2006 में, इस्कॉन के प्रशासनिक आयोग (जी.बी.सी.) द्वारा प्रक्षेपित अर्थात् पहली बार प्रदर्शित की गई, गहन, बहुशाखीय, रणनीतिक योजना निर्माण कार्य की परियोजना के एक परिपक्व फल के रूप में आपको अर्पित है। यह अब तक चला आ रहा सतत प्रयास, श्रील प्रभुपाद के आन्दोलन के लिए समृद्धिशाली भविष्य की अनुभूति करने के लिए, सर्वांगी नियोजन व विकास कार्य में संलग्न करने के लिए, संपूर्ण विश्व के कई भक्तों को एक दूसरे के निकट ले आया। अंततोगत्वा हमारा ध्येय अपनी पूरी संस्था का अधिकृतीकरण करना है। इसके प्रत्येक सदस्य इसके विभिन्न व्यक्तियों के समस्त समूह तथा इसका संचालन व मार्गदर्शन करने वाले प्रत्येक अधिकारीगण को अधिकृत करना है- जिससे कि वे सभी श्रील प्रभुपाद व श्रीचैतन्य महाप्रभु की इच्छाओं को फलीभूत करने के लिए अपना प्रभावशाली सहयोग देकर, एकजुट होकर मिलकर कार्य करें। प्रारम्भ से ही प्रत्येक व्यक्ति ने जान लिया था कि एक विशिष्ट मूल तत्त्व इस सफलता के लिए परम आवश्यक था क्योंकि सामान्यतया ऐसा कहा जाता था, "श्रील प्रभुपाद को केन्द्र में रखना चाहिए।"

इस संदर्भ में 'कार्यनीति योजना समिति' को तीव्रता से यह जानकारी हो गई थी कि निकट भविष्य में इस्कॉन को एक गंभीर व संकटग्रस्त चुनौती जैसी अप्रिय स्थिति का सामना करना होगा: समय में ऐसा अपरिहार्य परिर्वतन आयेगा जब इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ समस्त भक्तगण चले गये हों। यह अवश्यंभावी हानि श्रील प्रभुपाद पद समिति (एस पी पी सी) के कार्य के लिए अतिरिक्त प्रेरक बन गई। इसके समस्त सदस्य समझ गए कि बाद में आने वाली पीढ़ियों के लिए श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति कम नहीं होनी चाहिए। (वस्तुतः कुछ लोगों

का विश्वास था कि उनकी उपस्थिति और भी बढ़ सकती थी।) इसे कैसे आसान बनाया जाए? कैसे इसे संभव किया जाए? इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के साथ उनके गहरे संबंध की निरन्तर बढ़ती हुई जानकारी को, कैसे पीढ़ी दर पीढ़ी, इस्कॉन के समस्त भक्तों में संवर्धित किया जाए जिससे कि सभी भक्त अपने जीवन में उनसे एक जीवन्त उपस्थिति के रूप में आकस्मिक भेंट कर सकें? कैसे उनका मिशन उनकी शिक्षाएँ, उनका दृष्टिकोण, उनका दृढ़-संकल्प व उनकी कृपा, प्रत्येक धड़कते हृदय के साथ एकत्व स्थापित करेंगे?

एस पी पी सी के सदस्य के रूप में मुझे इस्कॉन के भक्तों के लिए, श्रील प्रभुपाद की स्थिति को 'संस्थापकाचार्य' के रूप में सूचित करने के विषय में एक मूलभूत दस्तावेज लिखने का कार्य सौंपा गया।

इस कार्यभार को स्वीकार कर लेने पर मैंने देखा कि मैंने श्रील प्रभुपाद के विषय में, उनके जीवन के विषय, उनकी संस्कृति के विषय में, उनकी गतिविधियों के विषय में, एक शिष्य के रूप में स्वयं के विषय में और उसी प्रकार अपने गुरुभाइयों तथा गुरुबहनों के विषय में बहुत अधिक सोचते हुए, कई दिन व कई रातें व्यतीत कर दीं। इन दिनों व इन रातों के दौरान मेरी मानसिक तथा भावनात्मक स्थिति तीव्रता से बढ़ गई, सशक्त हो गई, परंतु फिर भी मैं अभी तक किसी भी सुस्पष्ट व निश्चयात्मक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका। तब मैं नीचे बैठ गया, फिर दो या तीन घंटों में अपनी इच्छा से, बिना किसी के आदेश के- एक छोटा सा प्रकथन- तीन पृष्ठों से अधिक नहीं- टाईप किया अर्थात् टंकण किया। यह थोड़े से शोधकार्य या बिना किसी शोधकार्य पर आधारित था और न ही कोई नई खोज थी- केवल मेरा स्वयं का अंतर्ज्ञान व "साक्षात्कार" था। मैंने इसे कुछ हद तक शोधित किया तथा अगले सुलभ अवसर पर इसे 'कार्यनीति योजना समिति' के अन्य सदस्यों के समक्ष प्रदर्शित किया।

मुझे बहुत राहत मिली, सशक्त रूप से, पूरे हृदय से सभी की सकारात्मक सहमति ने मुझे आश्वासन दिया कि मैं सही दिशा की ओर बढ़ रहा था। आगे बढ़ने के लिए उनके द्वारा दिये गए निर्देश ने इस दिशा को

एक ठोस आकर दे दिया था। उन्होंने कहा, " अभी तक बहुत अच्छा कार्य किया" "अब व्याख्या लिखो।"

मुझे ध्यान देना चाहिए कि सामान्य रूप से कहा गया "बहुत अच्छा" विस्तृत टीका-टिप्पणी करने वाले परिजनों द्वारा गौर किया गया। सभी ने विस्तृत रूप से इस विषय पर अपनी राय दी, अनुरोध करती हुई टिप्पणी, एक स्थान से दूसरे स्थान तक, अधिक समर्थन, स्पष्ट करना, या विस्तारपूर्वक वर्णन करना, संदेह व अविश्वास का संकेत देती हुई टीकाएँ, या किंकर्त्तव्यविमूढता की स्थिति का संकेत करती हुई टिप्पणियाँ, समावेश या जाँच-पड़ताल के लिए अन्य विषयों को विचारार्थ प्रस्तुत करती हुई टीकाएँ इत्यादि। मैं इन टीकाओं को अपने साथ ले गया वे अत्यन्त सहायक सिद्ध हुईं और तब छोटे प्रकथन में सुधार करने के उपरान्त मैंने वही किया जैसा मुझे करने के लिए कहा गया था। मैंने व्याख्या लिखनी प्रारंभ कर दी।

फलस्वरूप, अंतिम परिणाम जो अब हमारे हाथ में है, मूल पाठ पर की गई टीका सहित एक मूल रचना के रूप में आता है। मूल पाठ पहले दिया गया है। उसके बाद उसकी बहुत लंबी व्याख्या की गई है। इस अंश में मुख्य पाठ उचित क्रम में दर्शाया गया है किन्तु उसे सुविधाजनक खंडों में विभाजित कर दिया गया है। मुख्य पाठ बड़े व गहरे अक्षरों में छपा है जबकि उस खंड की उसके बाद की गई व्याख्या सामान्य रूप में प्रकाशित है।

मूल रचना छोटी है केवल 1300 शब्द हैं (5 पृष्ठ)। अंत में तैयार हुई व्याख्या लगभग 21,000 शब्दों की (79 पृष्ठ) लंबी व्याख्या है। प्रारम्भ में मूल पाठ की रचना करने में लगभग 3 घंटे लग गए, व्याख्या लिखने में छह वर्षों का समय लगा।

मुख्य मूल पाठ सरल है तथा विशाल संख्या के तथा सामान्य दर्शकों के लिए उपयुक्त है। व्याख्या, विशेषकर किसी भी ऐसी व्यक्ति हेतु लिखी गई है जो श्रील प्रभुपाद का एक सच्चा शिक्षा शिष्य, प्रभुपाद-शिष्य बनने की आकांक्षा रखता हो। वस्तुतः इस्कॉन के समस्त सदस्यों का यही निश्चित

उद्देश्य होना चाहिए और ऐसा करने से स्वयं ही भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की हार्दिक इच्छाएँ पूर्ण हो जाऐंगी।

व्याख्या लिखने के लिए अकस्मात् लंबा तथा कभी-कभी कठिन परिश्रम करने से मुझे अप्रत्याशित आशीर्वाद प्राप्त हुआ। मैंने उन तथ्यों के विषय में गहराई से जानकारी प्राप्त की जिन्हें मैं पहले केवल बाह्य तौर पर ही या औपचारिक रूप से ही जानता था। मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया था यह जानते हुए कि श्रील प्रभुपाद एक महान शिष्य थे किन्तु अब मुझे और अधिक परिपूर्ण तथा मन को अत्यधिक प्रभावित करने वाला ज्ञान प्राप्त हुआ कि वे कितने महान हैं ऐसी जानकारी, मैं मानता हूँ, जो निरन्तर बढ़ती जाती है। जो जानकारी मुझे प्राप्त हुई उसने श्रील प्रभुपाद की सफलता के विषय में मेरे ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि कर दी और उनके प्रति मेरे प्रेम तथा कृतज्ञता में नई वृद्धि उत्पन्न कर दी। इस ज्ञान रूपी भेंट ने मुझे यह भी दिखलाया कि अत्यधिक निष्ठापूर्ण प्रमाण द्वारा, मेरी स्वयं की शिष्यता के प्रमाण द्वारा, उनकी महानता को प्रकाशित करना उनके शिष्य के रूप में, मेरा कर्तव्य है।

इसके अतिरिक्त "अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य" इस वैभवपूर्ण उपाधि जिसका उन्होंने उचित रूप से दायित्व लिया है, इसके वास्तविक अतिविस्मयकारी तात्पर्य को मैं और अधिक पूर्ण रूप से देख सका।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि यह कृति आपको वही लाभ पहुँचायेगी जो मैंने इसको लिखकर प्राप्त किया है। वे सभी लोग जिन्होंने इस कार्य को पूरा करने में मेरी सहायता की, मुझे प्रोत्साहन दिया, मेरा मार्गदर्शन किया, इसे आसान बनाया व मेरी त्रुटियों को सुधारा, उन सभी का मैं अत्यधिक आभार प्रकट करना चाहता हूँ। गोपाल भट्ट प्रभु तथा उनके योग्य सहयोगीगण द्वारा निर्देशित यह समग्र 'कार्यनीति योजना समिति' ने ऐसी परिस्थितियों की रचना की तथा उन्हें कायम रखा जिसके कारण यह परिणाम "वितरण करने योग्य" बनना संभव हो सका। परम पूजनीय भक्तिचारु स्वामी तथा अक्रूर प्रभु की, इस समय सह-अध्यक्षता में कार्यरत एस पी पी सी की समिति में सात वर्षों में अनेक परिवर्तन आये किन्तु वे सभी लोग जिन्होंने उस दल

में सेवा की थी और अब भी सेवारत हैं, उनसे प्राप्त अनुकूल प्रतिसूचना तथा प्रोत्साहन मेरे लिए अधिक मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, उसकी तुलना में जो प्राय: मैं व्यक्त किया करता था। मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ। एस पी पी सी के बाहर के कई वरिष्ठ भक्तों ने भी चल रहे कार्य का पुनरावलोकन किया। विशेषत: फरवरी 2013 में मायापुर में एकत्रित हुए सौ या उससे अधिक नेताओं के एक विशेष "सन्यासी, गुरु तथा जी.बी.सी. संघ" ने इस कार्य की रूपरेखा का पुन: निरीक्षण किया तथा अमूल्य टीकाएँ व टिप्पणियाँ उपलब्ध कराने में समय लगाया। लगभग बीस वरिष्ठ सदस्यों द्वारा निवेदित प्रतिक्रिया से उसी लेख के प्रारूप में उन्नति हुई। इसमें से अन्तिम प्रारूप निकल कर आया जिसका अक्तूबर, सन् 2013 में जुहू में हुई सभा में, जी.बी.सी. द्वारा एक बार फिर पुनरावलोकन हुआ। सुधार लाने हेतु कुछ और सुझावों के साथ, जी.बी.सी. द्वारा दिये गए एक आधिकारिक वक्तव्य के प्रकाशन के लिए, जी.बी.सी. ने इस कार्य को संपन्न करने की अपनी सर्वसम्मत अनुमति प्रदान की। जी.बी.सी. के सदस्यों के धैर्य के लिए, उनके सहयोग के लिए और सबसे अधिक उनके द्वारा दिये गये आशीर्वाद के लिए मैं इतना अधिक ऋणी हूँ, कि वह ऋण कभी नहीं चुकाया जा सकता है।

मैं अपनी सबसे निकटतम सहयोगी को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ। मेरी शिष्या श्रद्धा देवी दासी ने इस प्रयास में सतत व्यवस्था तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई, साथ ही उत्कृष्ट व संपूर्ण संपादकीय विभाग का सहयोग तथा सुझाव भी। मेरी पत्नी सौदामिनी देवी दासी भी चालू कार्य की प्रखर पाठक तथा समीक्षक थी, साथ ही साथ जीवन निर्वाह की अविरत उपलब्धकर्त्ता थी। मेरी देखरेख करना अत्यन्त कठिन है किन्तु उन्होंने किसी तरह इसे किया।

श्रील प्रभुपाद की सेवा में, आपका सेवक,
रवीन्द्र स्वरूप दास
फिलाडेल्फिया, पेनसिल्वेनिया
दिसम्बर, 2013

श्रील प्रभुपाद का पद

मूल रचना

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में प्रभुपाद

श्रील प्रभुपाद ने इस बात की अत्यधिक महत्ता व चिंता प्रदर्शित की, कि इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में उनके पद को सदैव आधिकारिक रूप से मान्यता दी जाए तथा स्वीकार किया जाए। उन्होंने अधिदेश जारी किया, उनकी प्रत्येक पुस्तक में आवरणात्मक पृष्ठ तथा आवरण पर, "कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद" के एकदम नीचे "संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ" लिखकर उनका पूरा नाम प्रदर्शित किया जाए। उसी प्रकार उन्होंने आदेश दिया कि इस्कॉन के समस्त अधिकृत दस्तावेजों, नाम मुद्रित लेखन सामग्री, प्रकाशित पुस्तकों एवं पत्रिकाओं तथा पहचान सूचक पर "अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ" के एकदम नीचे "संस्थापकाचार्य कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद" प्रकाशित होना ही चाहिए। इस प्रकार से तथा अन्य रूपों में भी इस्कॉन के साथ श्रील प्रभुपाद के विशिष्ट एवं घनिष्ट संबंध का सदैव सम्मान होना चाहिए।

संस्थापकाचार्य के रूप में श्रील प्रभुपाद की इस्कॉन में एक अद्वितीय स्थिति है। हमें इसे गहराई से समझने की आवश्यकता है। आचार्य के रूप में उनका अनुकरणीय व्यक्तिगत आचरण सभी इस्कॉन भक्तों के लिए एक आदर्श एवं मानदण्ड है। आचार्य के रूप में उनके व्यक्तिगत मापदण्ड एवं कार्य करने के सिद्धांत तक उनकी विशिष्ट भावना उनके द्वारा खड़े किए गए इस संस्थान में एक सर्वहितकारी समाज का रूप लेती हैं। प्रत्येक सदस्य इस भाव को अपनी पहचान का अभिन्न अंग बनाकर उस भावना को आत्मसात करता है। उनका भाव (आत्मा) इस संस्थान की संस्कृति के सार रूप में व्याप्त है और इसके सदस्य विश्व में इसके प्रत्यक्ष प्रतीक लगते हैं।

हम हमारी परम्परा में बहुत से महान आचार्यो से सीखते हैं और उनका

सम्मान करते हैं। परंतु इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में श्रील प्रभुपाद हमारे लिए उन सब में से विशेष हैं। इस्कॉन में श्रील प्रभुपाद स्वयं प्रत्येक इस्कॉन भक्त के जीवन में सर्वव्यापी प्रमुख शिक्षा गुरु तथा नित्य मार्गदर्शक एवं सजग निर्देशक के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार वे इस्कॉन की आत्मा हैं। अत: जब तक इस्कॉन उनकी इच्छा की मुक्तिसंगत अभिव्यक्ति और एकीकृत उपकरण बना हुआ है तब तक श्रील प्रभुपाद स्वयं इस विश्व में प्रभावपूर्ण ढंग से काम कर रहे हैं। इस प्रकार श्रील प्रभुपाद इस्कॉन की आत्मा हैं और इस्कॉन उनका शरीर।

प्रभुपाद द्वारा इस्कॉन की स्थापना के कारण

जब श्रील प्रभुपाद ने भगवान चैतन्य के आन्दोलन को एक विश्व प्रचार अभियान के रूप में सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया तो उन्होंने एक नई संस्था, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) बनाने का एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया और इसके संस्थापकाचार्य वे स्वयं बने। ऐसा उन्होंने अपने अनुभूत ज्ञान के आधार पर किया जिसका सार तत्व उन्होंने अपने गुरु से ग्रहण किया था। दुर्भाग्य से उनके गुरु महाराज के देहावासान के पश्चात् उस ज्ञान एवं अनुभूति की अभिव्यक्ति उनके गुरु के अपने संस्थान में जो अब खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया था, लगभग बंद हो गई थी। अत: प्रभुपाद ने एक नई संस्था की नींव रखी जो सम्पूर्ण रूप में तथा इसके प्रत्येक भाग में उस अनुमति को सम्मिलित एवं विकसित करेगी जो अपने आपको कष्ट झेल रही मानवता के बीच भगवान का शुद्ध प्रेम वितरण की स्थिर एवं अथक वचन-बद्धता के रूप में प्रदर्शित करेगी।

यदि कोई संस्था ऐसा कर पाने में पूरी एकाग्रता और दृढ़ता के साथ कार्यशील हो सकती है तो उसका एक निश्चित रूप बहुत आवश्यक है। इसीलिए श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने एक-एक ऐसी संस्था का विचार प्रस्तुत किया जिसमें आचार्य के बजाय भक्तों के निर्देशक समूह जिसे "गवर्निंग बॉडी कमीशन" का प्रस्ताव था। चूंकि गौडीय मठ इस बात को नहीं समझ पाए अत: श्रील प्रभुपाद ने "निरर्थक" करार दिया।

हमारी मुख्य चुनौती

श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन की संरचना इस प्रकार की, 1970 में जी.बी.सी. का गठन किया और उसकी क्रमिक अभिव्यक्ति एवं विकास की देखभाल की। यह कह कर की उन्हें इस्कॉन में हजारो-हजारो आध्यात्मिक गुरु चाहिए। उन्होंने यह लक्षित किया कि गुरु शिष्य संबंध इस्कॉन की एकीकृत संस्था में जी.बी.सी. के निर्देशन में हो। इस तरह की संस्था में अनेक गुरु, अन्य नेताओं और व्यवस्थापको के साथ मिलकर ठोस बल के साथ कार्य कर सकें।

जब तक प्रभुपाद अकेले आचार्य व दीक्षा गुरु के रूप में उपस्थित थे तब तक संस्था का ढांचा आवश्यक रूप से मूल/प्राथमिक आकर में ही रहा, जैसे एक शिशु अपनी माँ के गर्भ में होता है, उसका आकार व कार्य पूरी तरह से नहीं थे। प्रभुपाद की प्रकट उपस्थिति के दौरान, परस्थितियों के अनुसार, गवर्निंग बॉडी कमीशन स्पष्ट रूप से मुख्य प्रबंधक प्राधिकरण के रूप में पूर्ण भूमिका नहीं ग्रहण कर पाई व केवल प्रभुपाद ही गुरु रहे। इसलिये पूरित कार्यों को फलीभूत होने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी।

फलस्वरूप प्रभुपाद ने अपने जाने के बाद हमारे लिए स्पष्ट तौर पर इस्कॉन के रूप व कार्यों को संसार में प्रभावशाली तौर पर क्रियान्वित करने का काम छोड़ा। एक प्रमुख चुनौती थी, गुरु-शिष्य के सम्बंध को एकीकृत करना जो व्यक्ति के गुरु के लिए गहरी निष्ठा व प्रतिबद्धता की मांग करती है व समाज के भीतर निश्चित तौर पर उच्च गहरी व सभी को शामिल करके सहयोग की निष्ठा। यह वफादारी हमारी साझी निष्ठा है। यह निष्ठा साबित होती है यदि हम इस संस्था में जो हमें विरासत में मिली उनके द्वारा एक दूसरे के सहयोग के व्यवहार का पालन करें, ताकि हम उनकी आंतरिक इच्छा को पूरा कर पाएं।

हमने यह भी अनुभव किया कि जोनल आचार्य (क्षेत्र सीमित आचार्य) के माध्यम से सारे जगत को हमने जब अलग-अलग क्षेत्रों में बांट दिया, लेकिन हमने यह भी पाया कि इस्कॉन की एकता विषमता में पड़ गई। वह पद्धति अब कार्यशील नहीं है। अतः हमें श्रील प्रभुपाद की इच्छा अनुसार संस्था की

अखंडता को और आगे लेकर जाना होगा।

एक रोचक बात–दो ऐसे इस्कॉन विरोधी आंदोलन भी हैं जो कि स्वयं को वास्तविक इस्कॉन बतलाते हैं। इन्होंने एक या अधिक श्रील प्रभुपाद के दिए गए अंगों का तिरस्कार किया है– ऋत्विक प्रणाली वास्तविक गुरु को स्वीकार नहीं करती और उन्हें सिर्फ संस्थापन सम्बंधी अधीक्षक ही मानती है और दूसरी ओर जी.बी.सी. को हटाकर किसी प्रमुख संन्यासी के अनुयायी होकर उन्हीं को सर्वेसर्वा आचार्य मानती है।

इस्कॉन को दोनों ही घटकों को पालन–पोषण करना है–––इस्कॉन और जी.बी.सी. के प्रति एक सामजस्य की भावना से ओत–प्रोत वफादारी की भावना और दूसरा प्रामाणिक शिक्षा के अनुसार गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को इस्कॉन में संजोकर रखना। हमें यह समझना है कि किस प्रकार से किसी प्रकार का कोई परस्पर विरोधी या मतभेदी विचार नहीं है। हमें बल्कि यह समझना है कि किस प्रकार से यह एक दूसरे को मजबूत करने और परस्पर सहारा देने के लिए है।

एक निर्णायक अंग जो कि सिद्धांत को गहरे से समझाता है। वह है श्रील प्रभुपाद की वास्तविक स्थिति को ज्ञान और विज्ञान के दृष्टिकोण से स्थापित करेगा। श्रील प्रभुपाद इस्कॉन की एकता के प्रतिरूप प्रतिनिधि हैं। चाहे तो किसी भी शिक्षा गुरु या दीक्षा गुरु की सेवा करे, लेकिन श्रील प्रभुपाद की अद्वितीय स्थिति को अपने हृदय में अनुभव करें। प्रकट गुरुजनों का अप्रकट गुरुओं से अधिक प्रभाव होता है, क्योंकि श्रील प्रभुपाद अब अप्रकट हो चुके हैं अत: उनके वपु रूप में अनुपस्थिति को हम उनकी वाणी से और गहरा सम्बंध बनाकर पूरा हो सकता है। (जैसा कि श्रील प्रभुपाद ने स्वयं भी सिखाया।)

इस बात का साक्षात्कार करना बहुत आवश्यक कि श्रील प्रभुपाद की यह स्थिति इस्कॉन के रोम–रोम में संस्कृतिक रूप में समाज की श्रील प्रभुपाद की स्थिति और उपस्थिति कभी भी समाप्त नहीं होगी चाहे उनको व्यक्तिगत रूप से जानने वाले सभी भक्त उनके साथ भगवद् धाम ही क्यों न चले जाएँ।

परिणामः

श्रील प्रभुपाद की संस्थापकाचार्य के रूप में अद्वितीय स्थिति को स्थापित करके निम्नलिखित निष्कर्ष निकालेंगेः

(1) पीढ़ी दर पीढ़ी को श्रील प्रभुपाद की विशेष कृपा प्राप्त होगी। भगवद् धाम जाने का जो मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया वह अधिक से अधिक लोगों को उपलब्ध होगा।

(2) श्रील प्रभुपाद को वाणी रूप में उपस्थित मानकर उन्हें हम शिक्षा गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं, ताकि इस्कॉन के सभी शिक्षक, प्रगति के हर स्तर पर प्रामाणिक रूप से श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं को सभी के सही मार्गदर्शन शरण और रक्षा हेतु प्रस्तुत कर पाएंगे।

(3) श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति से इस्कॉन की एकता और अस्तित्व की हमेशा रक्षा होगी।

(4) इस्कॉन की शिक्षाएं हर काल और परिस्थिति में यथारूप बनी रहेंगी।

(5) श्रील प्रभुपाद की विशिष्ट शक्ति जिसके द्वारा वह कृष्णभावनामृत का प्रखर रूप से प्रचार कर पाए---उसे भी हम सुरक्षित रख पाएंगे और उसका विकास भी कर पाएंगे।

(6) श्रील प्रभुपाद के द्वारा दिए गए ग्रन्थ हमारे लिए हमेशा मुख्य ज्ञान का स्त्रोत रहेंगे जिससे हम अंतदृष्टि और दिशानिर्देश प्राप्त करते रहेगें और विकास करते रहेगें।

(7) श्रील प्रभुपाद की दृष्टि के द्वारा भावी पीढ़ी भी पूर्ववर्ती आचार्यों को देख पाने के लिए सक्षम हो जाएगी।

श्रील प्रभुपाद का पद

(टीका सहित मूल रचना)

इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में प्रभुपाद

श्रील प्रभुपाद ने इस बात की अत्यधिक महत्ता व चिंता प्रदर्शित की, कि इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में उनके पद को सदैव आधिकारिक रूप से मान्यता दी जाए तथा स्वीकार किया जाए। उन्होंने अधिदेश जारी किया, उनकी प्रत्येक पुस्तक में आवरणात्मक पृष्ठ तथा आवरण पर, "कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद" के एकदम नीचे "संस्थापकाचार्यः अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ" लिखकर उनका पूरा नाम प्रदर्शित किया जाए। उसी प्रकार उन्होंने आदेश दिया कि इस्कॉन के समस्त अधिकृत दस्तावेजों, नाम मुद्रित लेखन सामग्री, प्रकाशित पुस्तकों एवं पत्रिकाओं तथा पहचान सूचक (लेटर हेड) पर "अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ" के एकदम नीचे "संस्थापकाचार्य कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद" प्रकाशित होना ही चाहिए। इस प्रकार से तथा अन्य रूपों में भी इस्कॉन के साथ श्रील प्रभुपाद के विशिष्ट एवं घनिष्ट संबंध का सदैव सम्मान होना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद की गहन चिंताः सन् 1970 में इस्कॉन प्रेस द्वारा प्रकाशित, श्रील प्रभुपाद के कुछ लेखों में, लेखक का नाम रूढ़िगत सम्मान से रहित दर्शाया गया और इस्कॉन में उनके पद को "संस्थापकाचार्य" के स्थान पर "आचार्य" की उपाधि से द्योतित करके प्रदर्शित किया गया। इस बात से प्रभुपाद ने, उनके पद को धीरे-धीरे कम करने के लिए चल रहे समन्वित प्रयास का पता लगा लिया।

सत्स्वरूप दास गोस्वामी, श्रील प्रभुपाद लीलामृत (4.93) में इस प्रसंग का वर्णन करते है:

> जब बोस्टन में इस्कॉन प्रेस ने एक नई पुस्तक पर प्रभुपाद के नाम का गलत मुद्रण किया तब प्रभुपाद गंभीर रूप से चिंतित हो गए। श्रीमद्भागवतम् के द्वितीय स्कन्ध के एक छोटे अध्याय में, कागज की जिल्द वाले आवरण पर उनका नाम केवल ए.सी. भक्तिवेदान्त लिखा हुआ था। प्रथानुसार उस पर "कृष्णकृपामूर्ति" तथा "स्वामी प्रभुपाद" अनिवार्यत: लिखा जाना चाहिए था जिसे छोड़ दिया गया था। श्रील प्रभुपाद का नाम आध्यात्मिक महत्त्व से लगभग वंचित ही था। एक अन्य इस्कॉन प्रेस द्वारा प्रकाशित ग्रंथों में भी, प्रभुपाद का इस्कॉन के "आचार्य" के रूप में वर्णन किया गया था, यद्यपि प्रभुपाद ने बार-बार इस बात पर बल दिया था कि वे संस्थापकाचार्य थे। उस समय तब अनेक आचार्य व आध्यात्मिक गुरु उपस्थित थे तथा भविष्य में और भी अनेक होंगें किन्तु कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ही अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के एकमात्र संस्थापकाचार्य थे।
>
> यह स्थिति और अधिक खराब हो गई जब प्रभुपाद ने प्रथम बार नयी भागवतम् पुस्तक खोली और उसकी जिल्द टूट गई तथा पृष्ठ निकल कर बाहर फैल गए। प्रभुपाद का चेहरा क्रोध से तमतमा गया।

ब्रह्मानन्द, "फॉलोइंग श्रील प्रभुपाद" वीडियो श्रृंखला में, इस प्रसंग के अपने व्यक्तिगत अनुस्मरण का उल्लेख करते हैं (जुलाई-अगस्त 1970, लॉस एंजिलिस):-

> इस समय स्थिति ऐसी थी जैसी प्रभुपाद समझते थे कि संघ के नेताओं द्वारा आध्यात्मिक गुरु को न्यूनतम स्तर पर पहुँचा दिया गया था, अधिकांशत: तो मेरी ओर से ही। आध्यात्मिक गुरु के प्रति द्वेष व ईर्ष्या रूपी रोग से मैं सबसे अधिक संक्रमित था। लॉस ऐंजिलिस की इस यात्रा में इस्कॉन प्रेस द्वारा, जिसका मैं अध्यक्ष था, सब कार्य गलत हो रहे थे। पुस्तकों का मुद्रण हुआ

> परन्तु प्रभुपाद की पदवी को उचित ढंग से व्यक्त नहीं किया गया। केवल ए.सी. भक्तिवेदान्त लिखा गया "कृष्णकृपामूर्ति" छोड़ दिया गया। यहाँ तक कि एक पुस्तक में, भागवतम् के एक अध्याय में केवल ए.सी. भक्तिवेदान्त लिखा "स्वामी" भी हटा दिया गया था। बोस्टन में इस्कॉन प्रेस से हमारे द्वारा मुद्रित एक पुस्तक मैंने प्रभुपाद को भेंट की और उन्होंने जैसे ही पुस्तक खोली तभी अचानक उसकी जिल्द चिटक कर टूट गई जब मन्दिर में उस पुस्तक का औपचारिक विमोचन किया जा रहा था।

श्रील प्रभुपाद को संदेह हो गया था कि यह घटना तथा अन्य अप्रत्याशित एवं अप्रिय घटनाएँ भारत से प्रसारित "विश्वासघाती संदूषण" के कारण घटित हो रही थीं। (श्रील प्रभुपाद लीलामृत 4.94-95)

> जब स्थानीय असंगत व असामान्य लोग श्रील प्रभुपाद पर भारी पड़ रहे थे तब उन्हें विचित्र बातों की जानकारी प्राप्त हुई जो भारत में उनके शिष्यों ने अपने पत्रों में लिखी थी। तब वे और अधिक परेशान व चिंतित हो गए। अमेरिका में भक्तों को लिखे गये एक पत्र से जानकारी मिली कि भारत में प्रभुपाद के गुरु भाइयों ने "प्रभुपाद" की उनकी उपाधि पर आपत्ति उठाई थी, उसे नापसन्द किया था। उन सबके अनुसार तो केवल भक्तिसिद्धांन्त सरस्वती को ही "प्रभुपाद" पुकारा जाना चाहिए था...।
>
> यद्यपि उनके शिष्य कभी-कभी अज्ञानता की बातें करते किन्तु वे जानते थे कि उनके शिष्य दुर्भावनाशील नहीं थे। फिर भी भारत से आये ये पत्र, उनके शिष्यों के लिए, प्रभुपाद के अनेक गुरुभाइयों द्वारा संक्रमित एक आध्यात्मिक रोग के रूप में वहाँ आये थे...।
>
> प्रभुपाद इस्कॉन के भावी संकट की आशंका के प्रति सचेत थे तथा उसे समझने में समर्थ थे।

> ...किन्तु अब भारत में, अविश्वसनीय रूप से की गई कुछ टिप्पणीयाँ एवं बोले गए कथन उनके कुछ शिष्यों के विश्वास एवं श्रद्धा को क्षीण कर रहे थे। शायद यह प्रच्छन्न रूप से घातक विश्वासघाती संदूषण जो अब फैलने लगा था, इसके कारण इस्कॉन प्रेस में मूर्खतापूर्ण त्रुटियों की वर्षा होने लगी थी, यहाँ तक कि लॉस ऐंजिलिस में भी असंगति होने की क्रिया में वृद्धि होने लगी थी।

फलस्वरूप, श्रील प्रभुपाद ने लोगों को इस बात के लिए आश्वस्त करने का विशेष प्रयास किया कि उनके पद को मान्यता देने हेतु उनके द्वारा निर्धारित एवं प्रतिष्ठित कार्य योजनाओं का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाना चाहिए। हम उनकी इस चिंता को, प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त अक्षरों में देखते है:

> यह बहुत अच्छी बात है कि आपने पहले से ही केन्द्र खोल दिया है तथा संघ को पंजीकृत करा दिया है। यह एक अच्छी शुरुआत है। पंजीकृत कराने से संबंधित एक तथ्य है कि हमारी पद्वति यह है कि समस्त पंजीकरण दस्तावेजों, लेखन-सामग्री, पुस्तकों एवं प्रकाशित ग्रंथों तथा पत्रिकाओं में, संस्थापकाचार्य कृष्णकृपामूर्ति श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का नाम लिखा होना चाहिए। अतः मैं सुबलदास स्वामी के पत्र में, नाम मुद्रित लेखन सामग्री पर यह नाम लिखा हुआ देख रहा हूँ, यह एकदम सही है। इसी प्रकार से करते रहिये।[1]

> अतः आप अपनी कार्यवाही आगे बढ़ा सकते हैं तथा सभी उचित व आवश्यक कदम उठाकर हमारे इस संघ को पंजीकृत करा सकते हैं। इससे पहले कि पंजीकरण की क्रिया अन्तिम चरण पर पहुँचे, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि हमारे संघ के संविधान की एक प्रति मुझे भेजी जाए जिससे मैं उसे अन्तिम रूप से स्वीकृति दे सकूँ। उसमें मेरा नाम संस्थापकाचार्य ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी के रूप में लिखा होना चाहिए। समस्त

[1] देवजी पुंज को लिखा गया पत्रः 13 नवम्बर, 1974

मामलों में मुझे पूर्ण अधिकार होना चाहिए।[2]

हम देख सकते हैं, तब, कैसे श्रील प्रभुपाद विशेष रूप में चाहते थे कि उनका नाम संस्थापकाचार्य, ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी के रूप में ही द्योतित किया जाय। इस विशिष्ट संदर्भ में प्रभुपाद ने उनसे जुड़े अकेले प्रयुक्त हुए नाम "आचार्य" को, अनुपयुक्त तथा अपराधजनक ठहराया। उन्होंने इस यथार्थ अग्रेजी-संस्कृत संयुक्त योगिक शब्द का प्रयोग करने का आदेश जारी किया। "संस्थापकाचार्य" ही ऐसी उपाधि है जो श्रील प्रभुपाद व इस्कॉन के मध्य कायम रखे हुए असामान्य घनिष्ट सम्बन्ध को अन्य लोगों तक पहुँचाती है।

संस्थापकाचार्य के रूप में श्रील प्रभुपाद की इस्कॉन में एक अद्वितीय स्थिति है। हमें इसे गहराई से समझने की आवश्यकता है। आचार्य के रूप में उनका अनुकरणीय व्यक्तिगत आचरण सभी इस्कॉन भक्तों के लिए एक आदर्श एवं मानदण्ड है। आचार्य के रूप में उनके व्यक्तिगत मापदण्ड एवं कार्य करने के सिद्धांत तक उनकी विशिष्ट भावना उनके द्वारा खड़े किए गए इस संस्थान में एक सर्वहितकारी समाज का रूप लेती हैं। प्रत्येक सदस्य इस भाव को अपनी पहचान का अभिन्न अंग बनाकर उस भावना को आत्मसात करता है। उनका भाव (आत्मा) इस संस्थान की संस्कृति के सार रूप में व्याप्त है और इसके सदस्य विश्व में इसके प्रत्यक्ष प्रतीक लगते हैं।

एक आचार्य, या स्वयं श्रील प्रभुपाद के ही शब्दों में "आध्यात्मिक विज्ञान का एक दिव्य प्राध्यापक"[3] आधुनिक शिक्षाविद से भिन्न प्रजाति का होता है। दिव्य प्राध्यापक अपने शिष्यों की देख-रेख करते हुए उनको पवित्र अध्ययन में प्रवेश देकर वैदिक ज्ञान में पारंगत बनाता है तथा इसके नियमों तथा शिक्षण प्रणालियों में प्रशिक्षित करता है।

'आचार्य' शब्द 'आचार' से आता है जो आचरण के शास्त्रीय नियमों तथा व्यावहारिक आचरण दोनों को दर्शाता है। आचार्य ऐसा आचरण केवल निर्देशक बनकर ही नहीं, वरन् अपने व्यक्तिगत उदाहरण से सिखाता है। आचार्य आदर्श

---

[2] श्रीमान पुंज को भेजा गया पत्रः बम्बई, 29 दिसम्बर 1974

[3] चै. च आदि 1.46, तात्पय

प्रस्तुत करता है। प्रभुपाद लिखते हैं— "आचार्य एक आदर्श शिक्षक होता है, जो शास्त्रों के मर्म को जानता है, एकदम उनके दिशानिर्देशों के अनुसार आचरण करता है और अपने छात्रों को भी इन सिद्धांतों को अपनाना सिखाता है।"[4] शिक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान से आगे ले जाती है और आचार्य द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत आदर्श के आचरण पर शिष्यों का चरित्र निर्माण करती है।

आचार्य को अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति निष्ठावान रहना चाहिए। "परम्परा में पूर्ववर्ती आचार्यों का दृढ़तापूर्वक अनुसरण किए बिना कोई आचार्य (गुरु) नहीं हो सकता। जो वास्तव में भक्ति में आगे बढ़ने का इच्छुक है उसे केवल पूर्ववर्ती आचार्यों को प्रसन्न करने की इच्छा (प्रयास) करनी चाहिए।[5] इस अगाध श्रद्धा के साथ-साथ आचार्य को अपने शिष्यों के विभिन्न समूहों के लिए समुचित, प्रभावी एवं वैकल्पिक दिशानिर्देश देने में भी निपुण होना चाहिए प्रभुपाद लिखते हैं-- "प्रत्येक आचार्य के पास अपने आध्यात्मिक आंदोलन का प्रसार करने के लिए एक विशेष माध्यम होता है।" आचार्य को कोई ऐसी युक्ति निकालनी चाहिए जिससे लोग येन-केन-प्रकारेण कृष्णभावनामृत में आ सकें।[6] अपने स्वयं के अनुभव को ध्यान में रखते हुए वे लिखते हैं।

> शिक्षक (आचार्य) को समय, उम्मीदवार तथा देश को ध्यान में रखना होता है। उसे नियमाग्रह से बचना चाहिए अर्थात असंभव को सम्भव बनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जो एक देश में सम्भव है वह दूसरे में भी हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। आचार्य का कर्तव्य है कि वह भक्ति के सार को ग्रहण करे। 'युक्त-वैराग्य' के संदर्भ में यहाँ-वहाँ थोड़ा परिवर्तन हो सकता है।"[7]

परम्परा के प्रति अटूट निष्ठा बनाए रखने की योग्यता तथा साथ ही साथ विभिन्न श्रोतागणों के अनुसार उन परम्परा को ढाल पाने में दक्षता अनुभूत

[4] चै. च आदि 7.37, तात्पर्य

[5] चै. च मध्य 19.156, तात्पर्य

[6] चै. च. आदि 7.37 तात्पर्य

[7] चै. च. मध्य 23.105 तात्पर्य

ज्ञान का लक्षण है:

> व्यक्तिगत अनुभूति का अर्थ यह नहीं है कि कोई अहंकार वश पूर्ववर्ती आचार्यों को अनदेखा करके अपने स्वयं के ज्ञान का बखान का प्रयास करे। उसे पूर्ववर्ती आचार्यों में पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए और साथ ही साथ उसे सम्बंधित विषय का अच्छे से ज्ञान होना चाहिए ताकि वह विशिष्ट परिस्थितियों में इसका प्रस्तुतिकरण समुचित रूप से कर सके। पाठ का मूल उद्देश्य यथावत रहना चाहिए। इसका कोई दुबोध अर्थ न निकालते हुए, श्रोताओं को समझाने के लिए इसे रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसे अनुभूति कहते हैं।[8]

अनुभूति आचार्य को अपने आंदोलन के प्रसार के लिए एक विशेष माध्यम प्रदान करती है।

ग्राही शिष्यों को अपने समीप लाने के लिए (उपनीति) आचार्य का अपने साधनों (माध्यमों) पर पूर्ण नियंत्रण होता है तथा वह उन्हें अपने भाव से भरता व जीवंत बनाता है तथा अपने ज्ञान एवं अनुभूति से उन्हें सशक्त बनाता है। वे उसके व्यक्तिगत प्रतिनिधि बन जाते हैं अर्थात जो आचार्य के ज्ञान को यथावत पुन: प्रस्तुत कर सकते हैं।

‘संस्थापकाचार्य’ अंग्रेजी व संस्कृत का मिश्रित पारिभाषिक शब्द है जिसके द्वारा श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन के संदर्भ में अपनी स्थिति को ज्ञापित करने का आदेश दिया। हम देख चुके हैं कि इस संदर्भ में प्रभुपाद ने आचार्य शब्द के प्रयोग को न केवल अपर्याप्त अपितु अपराधपूर्ण माना। फिर भी हम जानते हैं कि पारम्परिक रूप से आचार्य शब्द का प्रयोग किसी आध्यात्मिक संस्था के माननीय मुखिया के लिए मानद उपाधि के रूप में किया जाता है। इस प्रकार हमें समझना चाहिए कि ‘संस्थापकाचार्य’ को अधिक अधिकार दिया गया है जो उनकी विशेष पहचान बनाता है।

श्रील प्रभुपाद हमारी परम्परा में इस उपाधि को (आग्रहपूर्वक, विधिवत)

---

[8] श्रीमद्‌भागवतम् 1.4.1 तात्पर्य।

ग्रहण करने वाले पहले आचार्य है। ऐसी सम्भावना जताई जा सकती है कि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को भी इस उपाधि से विधिवत विभूषित किया गया होगा, परंतु इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है।

गौडीय मठ की अंग्रेजी भाषा की पत्रिका 'द हार्मोनिस्ट'[9] के निरीक्षण से जानकारी मिलती है कि प्रारम्भ के वर्षों में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की पहचान दो विशेष पदनामों से होती थी। एक ओर वे 'श्रीविश्व वैष्णव-राजसभा के अध्यक्ष' है तथा दूसरी और वे केवल आचार्य या फिर गौडीय समाज के आचार्य, मध्वगौडीय समाज के आचार्य या 'गौड़ीय वैष्णवों के आचार्य' आदि हैं। कहीं कहीं दोनों पदवियाँ संयुक्त रूप से परंतु अलग-अलग भी प्रयोग की गई है जैसे हम इस उदाहरण में पाते हैं; "वर्तमान युग के आचार्य (मसीहा) और जो अब उस ऐतिहासिक विश्व वैष्णव राजसभा के अध्यक्ष हैं" (हार्मो 28.2 : 58)[10] विधिवत् पुनर्जीवित विश्व-वैष्णव राजसभा (जो कि तीन प्रमुख शिष्यों के व्यवस्थापक मंडल के आधीन कार्यरत थी) का निकट सहयोगी निरंतर बढ़ते हुए मंदिरों का महांसघ था जो के संन्यासियों द्वारा प्रशिक्षण, शिक्षा एवं प्रचार के केंद्र थे तथा जिनको सामूहिक रूप से 'गौडीय मठ' और अधिकतर 'गौड़ीय मिशन'[11] कहा जाता था। साथ ही साथ आचार्य और अध्यक्ष

[9] जून 1927 को श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने सज्जनतोषणी (1881 में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा आरंभ की गई) को अंग्रेजी भाषा की एक पत्रिका में परिवर्तित कर दिया जिसका नाम 'द हार्मोनिष्ट' रखा गया। जैसा कि प्रथम संस्करण में बताया गया है, (यह शीर्षक 'सज्जन तोषणी' का मुक्त अंग्रेजी समतुल्य है।) 'द हार्मोनिस्ट' 25 वें अंक से आरंभ होता है, क्योंकि यह सज्जन तोषणी का ही अगला अंक है जिसने समग्र विश्व तक अपनी प्रार्थना के लिए अब अपने आपको अंग्रेजी भाषा में अलंकृत कर लिया है। (हार्मो 25:4) पत्रिका जून 1933 तक हर महीने छापी गई (अंक 30, नं. 12) और चौदह महीने के अंतराल के बाद एक पाक्षिक पत्रिका के रूप में पुन: आरंभ हुई।

[10] विश्व-वैष्णव-राजसभा ऐतिहासिक है, क्योंकि इसका आविर्भाव छ: गोस्वामियों के समय में हुआ था। गुमनामी का समय काटने के पश्चात 1886 में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने छोटे शीर्षक 'विश्व-वैष्णव सभा' के नाम से पुन: इसका औपचारिक उद्घाटन किया और 1918 में श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती द्वारा इसे अपने मूल नाम से पुन: प्रकाशित किया। उनकी व्याख्या के अनुसार 'विश्व वैष्णव राज' का अर्थ है, सारे विश्व के वैष्णवों का राजा अर्थात श्री चैतन्य महाप्रभु और सभा का अर्थ है उन लोगों का समूह जो उनकी पूजा करते हैं (सज्जन तोषणी श्री.भ.वै.1:70-73 में उद्धृत)

[11] गौडीय मिशन' शब्द का प्रयोग सामान्यत: गौडीय मठ और विश्व-वैष्णव राजसभा दोनों को

की पदवी जुड़ गई और वही धीरे-धीरे भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के लिए मानक उपाधि बन गया। 'अध्यक्ष आचार्य' यह मिश्रित उपाधि 'विश्व-वैष्णव राज सभा' तथा गौडीय मठ (या अन्य नामों तथा गौडीय मिशन और मिशन) दोनों के संदर्भ में प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त 'आचार्य ' उपाधि की ही भांति 'अध्यक्ष आचार्य' की उपाधि भी श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर[12]

मिलाकर किया जाता है। जैसा कि भक्ति विकास स्वामी बताते हैं (श्री.भ.वै. 1:254) सभी गौडीय मठ संस्थान के मुख पत्र का काम करती थी। निम्नलिखित बातें मठ और सभा के बीच सम्बंधों को समझाने में कुछ सहायता करेंगी। 1) 1927 से 1933 तक गौडीय मठों की संख्याकित सूचि 'श्री विश्व वैष्णव राज सभा के सहयोगी मठ' शीर्षक के अंतर्गत 'द हार्मोनिस्ट' पत्रिका के पिछले आवरण के अंदर प्रकाशित हुई। 2) मठों के मुख्य आयोजनों के निमंत्रण श्री विश्व वैष्णव राज सभा के सचिवों द्वारा जारी किये जाते थे जिनमें कभी-कभी 'श्री वैष्णव राज सभा' तथा 'श्री गौडीय मठ' दोनों के पत्रचिन्हों का प्रयोग किया जाता था (हार्मो : 28 : 57-58, 104, 30 : 32)। 3) श्री चैतन्य मठ मायापुर के साथ वाले मैदान में फरवरी 1930 में आयोजित विशाल आस्तिक प्रदर्शनी का श्रेय भी इसी सभा को जाता है। इस प्रदर्शनी का पुनः आयोजन सितम्बर 1931 में गौड़ीय मठ कलकत्ता में तथा जनवरी 1933 में ढाका में किया गया। 4) सफल गौडीय मठ संस्थान के मनोनीत मूल मठ श्री चैतन्य मठ मायापुर को विश्व वैष्णव राजसभा का मुख्यालय भी बताया गया है (हार्मो 27.269) तथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा घोषित नाम संकीर्तन को सारे विश्व में व्याप्त करने के लिए स्थापित श्री विश्व वैष्णव राजसभा का मुख्य मूल मठ भी बताया गया है (हार्मो 31 : 140) 5) "गौडीय मठ के भीतर का जीवन" यह लेख इस प्रकार आरंभ होता है– "परम भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य अपने पार्षदों के साथ श्री चैतन्य मठ तथा श्रीकृष्ण चैतन्य की कृपा से श्री विश्व-वैष्णव-राजसभा के तत्वाधान में देशभर में प्रकट होने वाले, इससे सम्बद्ध अन्य गौडीय मठों में शाश्वत रूप से निवास करते हैं। (हार्मो 30 : 141) 6) 'पश्चिम में गौडीय मिशन' यह लेख कहता है– "श्री विश्व-वैष्णव राज सभा पश्चिम के सभ्य लोगों तक श्रीकृष्ण चैतन्य का संदेश ले जाने के लिए प्रचारकों का एक दल पश्चिम भेज रहा है। (हार्मो 30 : 322-25) 7) 'द हार्मोनिस्ट' के अधिकतर अंकों में मिशन के कार्यकलापों के विषय में समाचार छापे जाते थे। लगभग उसी प्रकार की घटनाओं का विवरण देते हुए इस लक्षण के शीर्षक निरंतर बदलते गए—'Qusselves' से राउन्ड द मठ फिर 'गौड़िया मिशन', फिर श्रीविश्व वैष्णव-राजसभा द गौड़िया मिशन और अंत में विश्व वैष्णवराज सभा

[12] कुछ नमूने—1932 की 'श्री-श्री ब्रजमण्डल परिक्रमा उत्सव' का छपा हुआ कार्यक्रम इसके मार्गदर्शक श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर का परिचय विश्व वैष्णवराज सभा के प्रेसिडेंट आचार्य के रूप में देता है। (हार्मो 30 : 92) मायापुर में बंगाल के राज्यपाल के स्वागत समारोह में श्री विश्व वैष्णव राज सभा के सचिव पंडित ए.सी. बनर्जी ने मिशन (हार्मो 31 : 253) की ओर से अपने स्वागत भाषण में भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर की चर्चा 'इस मिशन के अध्यक्ष आचार्य' के रूप में की (हार्मो 31:260) 'श्रीचैतन्य महाप्रभु का संदेश' इस लेख में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को श्री गौडीय मठ का अध्यक्ष आचार्य

के लिए बार-बार विशेष रूप से प्रयोग की जाती है।

दूसरी ओर भक्तिसिद्धांत सरस्वती के लिए संस्थापक पदवी का प्रयोग काफी कम किया गया है। इसका बहुत विशेष उदाहरण श्री गौडीय मठ बम्बई के सदस्यों की ओर से अभय-चरण दास द्वारा प्रस्तुत उस प्रसिद्ध व्यास पूजा श्रद्धांजलि में मिलता है जिसमें श्रील प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती का परिचय इस प्रकार देते हैं-- "जगदगुरु आचार्यदेव, जो इस गौडीय मिशन के संस्थापक हैं और विश्व-वैष्णव-राजसभा के अध्यक्ष हैं। मेरा मतलब है मेरे सनातन गुरुदेव।" (हार्मो. 32:291)[13]

यद्यपि हमें भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के लिए संस्थाकाचार्य पदवी का प्रयोग नहीं मिलता, परंतु इस विशिष्ट सम्मानसूचक की चर्चा गौडीय मठ के अंग्रेजी भाषा के अतिविशिष्ठ ग्रन्थ, निशिकांत संन्याल रचित 'श्रीकृष्ण चैतन्य' में मिलती है।

हमें पहले ही ज्ञात है कि 1927 में 'सज्जनतोषणी का रूपांतर अंग्रेजी भाषा की पत्रिका 'द हार्मोनिस्ट' में कर दिया गया था ताकि भारत के बाहर कृष्णभावनामृत का प्रचार किया जा सके। यह 1933 में मिशन के प्रचारकों को विदेशों में भेजने की ओर पहला कदम था। भक्ति विकास स्वामी इसे गौडीय मठ के अब तक के कार्यकलापों का 'सरताज' बताते हैं (श्री.भ.वै. 1:108) इन प्रचारकों को सुसज्जित करके प्रचार के मार्ग पर भेजने से पहले यह आवश्यक था कि उनके प्रयोग के लिए एक लिखित ग्रंथ हो, जो मिशन के

तथा सभी का वर्तमान आध्यात्मिक अध्यक्ष बताया गया (हार्मो 32 : 12), इसी प्रकार बी. एच. बोन महाराज के स्वागत भाषण में कलकत्ता के नागरिकों की ओर से भक्तिसिद्धांत सरस्वती को आपको अत्यंत प्रतिभाशाली गुरु परमहंस श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज, गौड़ीय मठ के अध्यक्ष आचार्य बताया गया (हार्मो 32 : 115)।

[13] मायापुर में ठाकुर भक्तिविनोद संस्थान के शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को इस संस्थान के संस्थापक अध्यक्ष बताते हैं। (हार्मो 31 : 397) महोपदेशक श्रीपाद के.एम. भक्तिबांधव बी.एल. के एक लम्बे लेख "श्रीगौड़ीय मठ एक विवरणात्मक रूप-रेखा" में उनको श्री गौडीय मठ का संस्थापक अध्यक्ष बताया गया है। (हार्मो 32 : 394) हमें ध्यान देना चाहिए कि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को कभी-कभी गौडीय मिशन के प्रमुख संचालक भी कहा गया है। (हार्मो 26 : 221, 30 : 256, 32 : 254)

संदेश को सम्पूर्ण, समग्र एंव त्रुटिरहित ढंग से प्रस्तुत करे ताकि यह उन्नत देशों के समस्त नागरिकों को पसंद आए। यह ग्रंथ 'श्रीकृष्ण चैतन्य' था।[14] इसके लेखक निशिकांत संन्याल, रैवनशा कॉलेज कटक में इतिहास के प्राध्यापक थे, उनका दीक्षित नाम नारायण दास था और उन्हें श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने भक्ति सुधाकर की उपाधि दी थी। अंग्रेजी भाषा की साहित्यिक योजनाओं में गुरु और शिष्य दोनों मिलकर काम करते थे और यह ग्रंथ भी उसका अपवाद न था।[15] भक्ति विकास स्वामी बताते हैं कि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर 'श्रीकृष्ण चैतन्य' ग्रंथ के पुनरावलोकन हेतु 1932 की गर्मियों में दो महीने नीलगिरि पर्वतीय स्थल पर रुके थे। (श्री.भ.वै. 1:243) स्पष्टत: प्रचारक इस पुस्तक के हाथ में आने तक अपने पश्चिम के अभियान पर नहीं जा पाए। (श्री.भ.वै. 2:27)

> 1933 की गौर पूर्णिमा पर प्रोफेसर सन्याल की अंग्रेजी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चैतन्य' के छपने पर श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि महाप्रभु के संदेश को यूरोप ले जाने का समय आ गया था। और 10 अप्रैल को उनका यह स्वप्न सत्य हुआ, जब श्रीमद भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज, श्रीमद भक्ति हृदय बोन महाराज तथा संविदानंद प्रभु बम्बई से जलपोत द्वारा लंदन के लिए रवाना हुए।

पैंतीस वर्ष पश्चात 14 मार्च 1967 को श्रील प्रभुपाद ने सैन फ्रांसिस्को से

---

[14] यह अनुमानित तीन खण्डों में से पहला खण्ड था। दूसरा खण्ड 2004 तक प्रकाशित नहीं हुआ। (कलकत्ता, गौडीय मिशन); और तीसरा खण्ड कभी लिखा ही नहीं गया।

[15] भक्ति विकास स्वामी लिखते हैं (श्री.भ.वै.2:362-63): 'द हार्मोनिस्ट के वास्त. विक सम्पादक एवं मुख्य लेखक के रूप में भक्ति सुधाकर अपने गुरुभाईयों के मध्य विशेष सम्मानजनक स्थान रखते थे। दार्शनिक ज्ञान एवं पेचीदा अंग्रेजी अभिव्यक्ति दोनों में सक्षम तथा अपने गुरुदेव के हृदय के साथ एक हृदयवाले (भक्ति सुधाकर) व्यावहारिक रूप से श्रील सिद्धांतसरस्वती के अंग्रेजी कीर्तन की अंतरात्मा थे। अत: श्रील सरस्वती ठाकुर और प्रो. निशिकांत सन्याल, एम. ए कभी-कभी अपने लेखों को आपस में एक-दूसरे के नाम से छपवा देते थे। उनको दिया गया दूसरा महत्वपूण र्ा कार्य पारिभाषिक पुस्तक 'श्रीकृष्ण चैतन्य' का संकलन था। उनको श्रीमद बोन महाराज द्वारा इंग्लैंड में दिए जाने वाले प्रवचनों को लिखने के लिए भी नियुक्त किया गया था।

न्यूयॉर्क में ब्रह्मानन्द दास को इस ग्रंथ की प्रशंसा करते हुए लिखा--

> "मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि डोनाल्ड ने प्रोफेसर सन्याल की पुस्तक श्रीकृष्ण चैतन्य खरीद ली है। दिवंगत प्रो. एन. के. सन्याल मेरे गुरुभ्राता थे और उनकी पुस्तक कृष्ण चैतन्य अनुमोदित एवं अधिकारिक है। इसे बहुत ध्यान से रखना और हम इस पुस्तक में से कुछ लेख 'बॅक टू गॉडहेड' में छाप सकते हैं। इससे हमें बहुत सहायता मिलेगी क्योंकि मेरे गुरु महाराज ने इस पुस्तक का अनुमोदन किया है। कृपया इसे ध्यानपूर्वक संभाल कर रखें और लौटने पर मैं इसे देखूंगा।"

अंग्रेजी एवं संस्कृत के मिश्रित उपाधि संस्थापकाचार्य का प्रमुख पदार्पण 'श्रीकृष्ण चैतन्य' पुस्तक के पृष्ठों में ही होता है जहाँ यह शब्द सर्वप्रथम इसकी विषय-वस्तु में दिखाई देता है।

> अध्याय सात— संस्थापकाचार्यगण (The Founder Acharyas) श्री विष्णुस्वामी श्रीनिम्बादित्य श्री रामानुज तथा श्री मध्व की रीतियां प्रागैतिहासिक काल से चले आ रहे वैष्णव मत के पुनरुत्थान को दर्शाती हैं। इनके अंतर्गत विष्णु की श्रद्धापूर्वक पूजा-अर्चना की जाती है। उनका दूसरा सिद्धांत काल्पनिक चिंतकों के मतों का निर्बाध रूप से खंडन एवं विरोध कराने का है। उनका आध्यात्मिक संयोग ठीक होते हुए भी अपूर्ण है।

लेखक सर्वप्रथम मानवीय आध्यात्मिकता के उतार-चढ़ाव का सिंहावलोकन प्रस्तुत करता है जिसका केंद्र बिन्दु चार प्रामाणिक वैष्णव सम्प्रदाय है। प्रोफेसर सन्याल के अनुसार भगवान स्वयं उन 'मूल प्रागैतिहासिक शिक्षकों को प्रेरणा देकर इन सम्प्रदायों का शुभारम्भ करते हैं। वे व्याख्या करते हैं:-

> लौह युग के चार सम्प्रदाय पुरातन काल से नित्य प्राचीन शिक्षकों यथा लक्ष्मी, ब्रह्मा, रुद्र तथा चार कुमारों (चतुः सनः) के दूरस्थ प्रभुत्व की मान्यता के आधार पर जुड़े हुए हैं। लोहयुग के चार 'संस्थापकाचार्यों' ने धर्म के उन मूल शिक्षकों के मतों

का प्रचार करना स्वीकार किया।

तो हम पाते हैं कि प्रत्येक सम्प्रदाय में सबसे ऊपर दो विशिष्ट सदस्यों का युगल है जिनका अपने क्रमानुयायियों के पहचान पर समग्र प्रभाव दिखता है। प्रत्येक युगल में पहला विशिष्ट व्यक्ति 'नित्य प्राचीन शिक्षकों' में से एक है जो उस सम्प्रदाय के लिए 'मूल प्रागैतिहासिक शिक्षक' बन जाता है; युगल का दूसरा सदस्य 'संस्थापकाचार्य' होता है, एक अनुभवी परामर्शदाता जो सम्प्रदाय का कलियुग में पुनरुस्थान एवं सुधार करता है तथा इसे चिंतन तथा क्रियान्वयन की एक विशेष प्रणाली देता है।[16]

निशिकांत सन्याल द्वारा प्रयुक्त 'संस्थापकाचार्य' की पदवी उन्हीं चार प्रख्यात ऐतिहासिक व्यक्तियों तक सीमित रहती है जिनको अन्यथा सामान्यत: 'सम्प्रदाय आचार्य' कहा जाता है।[17] "संस्थापक आचार्य" उनकी विशिष्ट उपाधि थी। इस स्थिति में यह समझा जा सकता है कि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने वह पदवी स्वयं नहीं ग्रहण की। ऐसे में स्वयं गौडीय मठ संस्थान के अध्यक्ष के लिए 'द हार्मोनिस्ट' के पृष्ठों में 'संस्थापकाचार्य' शब्द का सहज एवं विश्वासपूर्ण प्रयोग आश्चर्यजनक लगता है। इस शब्द का प्रयोग भी 'द गौड़ीय मठ' नामक महत्वपूर्ण लेख में किया गया जिसे अक्टूबर 1930 के हार्मेनिस्ट[18] के अंक से आरंभ करके तीन किश्तों में छापा गया था। इस

---

[16] रैवनशा के इतिहास के प्राध्यापक उनका कालानुक्रम देते हैं; मूल प्रोगैतिहासिक शिक्षक जो चार सम्प्रदायों के मूल स्रोत हैं, उनका कालानुक्रमिक प्राकट्य इस प्रकार है। (1.) लक्ष्मी, विष्णु की नित्यसंगिनी, (2.) ब्रह्मा जो गर्भोदकशायी विष्णु के नाभिकमल से प्रकट हुए, (3.) रुद्र जो द्वितीय पुरुष से पैदा हुए और (4.) चार कुमार जो ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। कलियुग के आचार्यों का कालानुक्रम इस प्रकार है। 1. श्री विष्णु स्वामी 2. श्री निम्बादित्य, 3. श्री रामानुज और 4. श्री मध्व (श्री.कृ.चै. 150)

[17] इस शब्द का प्रयोग सामान्यत: श्रील प्रभुपाद द्वारा किया गया। इसी प्रकार गौडीय मठ में यह शब्द इस समूह को दर्शाने के लिए सुरक्षित था। एक प्रत्यक्ष उदाहरण: अक्टूबर 1931 के 'द हार्मोनिस्ट' में (हार्मो 29:4:125) हमें निम्न आलेख मिलता है—"श्रील विष्णु स्वामी, चार वैष्णव सम्प्रदायों में से एक के संस्थापकाचार्य" (यह उस वर्ष कलकत्ता में आयोजित 'आस्तिक शिक्षा प्रदर्शनी' में प्रदर्शित एक प्रविष्टि में लिखा गया था।) उसी पृष्ठ पर भक्ति सिद्धांतसरस्वती ठाकुर को 'गौड़ीय वैष्णवों के आचार्य' बताया गया है। रोचक बात यह है कि 'श्रीकृष्ण चैतन्य' का प्रकाशन मार्च, 1933 तक नहीं हुआ था।)

[18] हार्मो 28 : 5 : 129-135, 28.6 : 163-168, 28.7 : 216-220।

प्रकार इसका प्रकाशन अभी-अभी पूर्ण हुए बाग बाजार कलकत्ता के महल जैसे सुंदर मंदिर जिसे 'श्री गौडीय मठ' कहा गया के उद्घाटन समारोह के साथ-साथ हुआ। अपने नवोदित ठाट-बाट में यह संस्थान ही इस लेख का विशिष्ट विषय है। 'द गौडीय मठ' की पहली किश्त हार्मोनिस्ट के अक्टूबर अंक का मुख्य भाग है और मुख्य पृष्ठ पर आदरणीय जगद्बंधु भक्ति रंजन[19] का चित्र है। जिन्होंने मंदिर निर्माण का निर्देशन किया और इसमें पूंजी लगाई। हार्मोनिस्ट में इस लेख में लेखक का नाम नहीं दिया गया था। यह एक ऐसी परम्परा थी जिसमें इन लेखों में (यदि लेख का नाम नहीं भी हो तो)[20] सशक्त सम्पादकीय अनुमोदन की छाप स्पष्ट झलकती थी। गौडीय मिशन के विश्व में प्रचार के महान कदम की प्रशंसा करने के साथ हार्मोनिस्ट अपने इस बढ़ते हुए संस्थान के आध्यात्मिक (कुछ हद तक गोपनीय) ढांचे और कार्यकलाप पर भी खुलकर चर्चा करता है। 'द गौड़ीय मठ' गौडीय वैष्णव धार्मिक वास्तुशास्त्र[21] में एक पारिभाषिक प्रयास को प्रस्तुत करता है।

---

[19] एक अत्यंत सफल व्यवसायी जो भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के शिष्य थे। इस गृहस्थ भक्त के विषय में और जानकारी के लिए श्री.भ.वै. 2/364-371 देखें।

[20] रचना और अंतर्वस्तु को देखकर यह स्पष्ट झलकता है कि इसके लेखक निशिकांत सन्याल थे। उनके भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के साथ निकट सम्बंधों, विशेषकर अंग्रेजी लेखन के क्षेत्र में, के लिए ऊपर नोट 15 देखें।

[21] गिरजा वास्तुशास्त्र धर्म विज्ञान की (चर्च) गिरजाघर की आध्यात्मिक संरचना एवं कार्यकलाप से सम्बंधित शाखा है। इस शब्द की रचना गिरजाघर के मूलभूत ढाँचे के निर्माण एवं सजावट को लेकर गिरजाघर वास्तुकला से सम्बंधित विचारों के प्रस्तुतिकरण हेतु 19वीं शताब्दी में इंग्लैंड में की गई। आजकल ईसाई संदर्भ में इस शब्द का दायरा बढ़कर अन्य विषयों तक फैल गया है। जैसे चर्च का ईसा या भगवान से क्या सम्बंध है? या चर्च का भगवद् धाम से क्या सम्बंध है। चर्च व्यक्ति को कैसे बचाता है। चर्च का विश्व या ध र्मनिरपेक्ष समाज से क्या सम्बंध है। हमारी अपनी वैष्णव परम्परा में वास्तविक गिरजावास्तु शास्त्र है, अतः हम आसानी से अनुकूल कर सकते हैं। ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश की "ecclesia" निम्न परिभाषा बताता है- नियमित रूप से बुलाई जाने वाली सभा के लिए यूनानी शब्द जो मुख्यतः एथेनियम लोगों की आम सभा के लिए प्रयोग किया जाता है। ईसाई धर्म के उद्भव के पश्चात यह शब्द नियमित रूप से चर्च के लिए प्रयोग किये जाने लगा।

इस प्रकार यह शब्द हमारी अपनी स्थिति में एकदम उचित बैठता है, हम भी एक सभा हैं, एक समूह, एक सभा जैसे यह विश्व-वैष्णव राज सभा में है। और जैसा हम देखेंगे पवित्र भवन निर्माण कला इस्कॉन में भी एक मुख्य भूमिका अदा करता है जैसे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों ने की।

यह लेख गौडीय मठ संस्थान के स्वरूप एवं कार्यकलाप को समझाने के लिए समुदाय के सदस्यों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले एक नियंत्रक रूपक[22] की पूर्वकल्पना करता है। एक मजबूती से बढ़ता हुआ वृक्ष जिसके मोटे-मोटे तने एवं शाखाएं सारे विश्व को ढक रहे हों। वस्तुत: यह रूपक श्री चैतन्य चरितामृत, आदि लीला के नवम् अध्याय के 'भक्ति के कल्पवृक्ष' में से लिया गया हैं। वहाँ पर महाप्रभु को एक माली के रूप में दिखाया गया है जो इस कल्पवृक्ष, भक्ति कल्पतरु को धरती पर लाता है, नवद्वीप की जमीन में इस बीज को बोता है और पौधे का सिंचन कराता है जो बड़ा होकर सबको सर्वत्र कृष्ण प्रेम का फल देता है। महाप्रभु न केवल माली है, बल्कि वृक्ष भी वे स्वयं हैं (कृष्ण-प्रेमार-तरु: स्वयम्) और इसके फल के भोक्ता एवं वितरक भी हैं।

गौडीय मठ संस्थान उस वृक्ष का प्राकट्य है। इसके सदस्यों ने यह समझ लिया कि इसका बीज महाप्रभु के अपने जन्म स्थान नवद्वीप में उनके प्रतिनिधि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर द्वारा बोया तथा सींचा गया था जो उस पवित्र स्थान में 1905 से 1914 तक रहे तथा एक अरब नाम जप करने की अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए प्रतिदिन 192 माला नाम जप किया। इस 'यज्ञ' का अधिकतर भाग उन्होंने उस सम्पति में बनाई गई एक झोपड़ी में किया जहां उन्होंने 27 मार्च 1918 को संन्यास लिया। भक्ति विकास स्वामी लिखते हैं "जिस दिन उन्होंने संन्यास लिया उसी दिन श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ने मायापुर में श्री चैतन्य मठ की स्थापना भी की तथा भगवान चैतन्य के विग्रह के साथ जिनके सामने उन्होंने एक अरब नाम जप करने की कसम ली थी, श्री-श्री गान्धर्विका-गिरिधारी के श्री विग्रह की पूजा का भी उद्घाटन किया।"[23] इस प्रकार गौडीय मिशन के वृक्ष ने पवित्र मिट्टी में जड़ पकड़ी तथा धीरे-धीरे बढ़ना तथा शाखाएं निकालना आरंभ किया। विशेषकर श्री गौडीय मठ के रूप में जिसकी स्थापना 1920 में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर

---

[22] 'नियंत्रक रूपक' शब्द साहित्यकि आलोचना से उधार लिया गया है, यह उस रूपक को दर्शाता है जो सम्पूर्ण साहित्यिक कृति में व्याप्त रहता है या उसे व्यवस्थित करता है।

[23] श्री.भ.वै. 1:66 गौडीय मिशन के उद्‌गम का यह वर्णन श्री.भ.वै. जीवन संबंधी विवरण भाग एक: (श्री.भ.वै. 1:1-122) पर आधारित है।

ने 1, उल्टाडंगी जंक्शन रोड, कलकत्ता[24] में की थी।

संस्थान का यह चित्रण 'द हार्मोनिस्ट' के पहले ही अंक में किया गया है। (जून, 1927)। "गौडीय मठ : इसका संदेश एवं गतिविधियाँ" सक्रिय विकास के भव को प्रकट करने वाली आलंकारिक शैली में गौडीय मठ को एक वृक्ष के रूप में चित्रित किया गया जिसकी जड़ मायापुर (महाप्रभु की जन्मस्थली), शाखा कलकत्ता में है और जो सारे भारत में फैल रहा है:-

> गौडीय वैष्णवों के भगवान की कृपा से गौडीय मठ का संदेश आज पूरे गौड देश में किसी के लिए भी अनजाना नहीं है और केवल गौड देश में ही नहीं बल्कि एक ओर नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी, श्री वृन्दावन, मथुरा और दक्षिणी भारत (दक्षिण ाात्य) तथा दूसरी ओर सारे उड़ीसा प्रदेश में श्री चैतन्य मठ, जिसकी जड़ श्रीमन् महाप्रभु की जन्मस्थली श्री मायापुर नवद्व ीप धाम में है, की प्रमुख शाखा, गौडीय मठ का संदेश अच्छी प्रकार से प्रसारित कर दिया गया है। गौडमण्डल, क्षेत्रमण्डल तथा ब्रजमण्डल में गौडीय मठ का संदेश पहुंच चुका है।

अक्टूबर 1930 में बाग बाजार में पुनर्स्थापित गौडीय मठ के उद्घाटन के अवसर पर जिसका निर्माण विशेष रूप से गौर-वाणी[25] के विश्व भर में प्रचार-प्रसार के मुख्यालय के रूप में किया गया था, उस महीने के 'द हार्मोनिस्ट' के आरम्भ में ही इस घटना के मर्म पर एक विश्लेषण छपा। (हार्मो 29.5: 129)।

> गौडीय मठ श्रीश्रीराधागोविन्द की सर्वोच्च सेवा का प्रतीक है। जिसे आधुनिक शहरी वातावरण में आचार्य की कृपा ने प्रकट

[24] यह भवन जिसका नाम 'भक्तिविनोद आसन' था, 1918 में कलकत्ता में प्रचार केंद्र के रूप में लिया गया था। उस समय वहां चार गृहस्थ अपने परिवार सहित रहते थे। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर का कमरा छत पर था। (श्री.भ.वै. 1:68-9) 1920 में इस स्थान को 'गौडीय मठ' के नाम से एक मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया। इसी स्थान पर दो साल बाद श्रील प्रभुपाद अपने गुरु से पहली बार मिले।

[25] श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने एक मंदिर-निर्माण करने का निर्देश दिया (जगबंधु) जहाँ से गौर सुंदर के संदेश का प्रसार समस्त विश्व में हो सके। (श्री.भ.वै.2:361)

> किया है...यह उस एक व्यक्ति के सेवा के आदर्श का प्रतीक है जो न ही किसी युग से सम्बंधित है और न ही इस संसार से। इस एक व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा से श्री श्री राधा गोविन्द की सेवा का उसका आदर्श भगवान की अत्यंत उत्कृष्ट सेवा के अभ्यास एवं प्रचार प्रसार हेतु इस देश के सबसे व्यस्त शहर में एक संस्थान के रूप में प्रकट हुआ है।
>
> इस संस्थान के नेतृत्व एवं विकास दोनों का श्रेय श्री श्रीमद परमहंस श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज को जाता है...।

इस प्रकार गौडीय मठ के प्राकट्य तथा विकास का सारा श्रेय आचार्य की कृपा को दिया गया है। इसकी उत्पति ऐसे हुई (हार्मो. 29.5 : 130)

> गौडीय मठ (कलकत्ता में) श्रीधाम मायापुर के श्री चैतन्य मठ की प्रमुख शाखा है। गौडीय मठ और श्रीचैतन्य मठ में अंतर एक दीपक से जलाए गए दूसरे दीपक जितना ही है। गौडीय मठ विश्व के हृदय में चैतन्य मठ का दृश्य अवतार है। श्री चैतन्य मठ जो कि भगवान के नित्य धाम के दिव्य वातावरण में इस संसार के लोगों के समक्ष प्रकट हुआ है इसका मूल शाश्वत स्रोत है। फिर भी गौडीय मठ और इसके सहयोगी अन्य स्थापित मठों की गतिविधियां मूल रूप से श्री चैतन्य मठ के समान ही हैं और इस संसार के सामान्य कार्यकलापों से एकदम भिन्न हैं।

यहाँ पर दीपक से दीपक जलाने की उपमा का प्रयोग विशेष है। यह ब्रह्मसंहिता 4.46 से लिया गया है जहाँ इसने भगवान कृष्ण और उनके अवतारों के बीच सम्बंध को स्पष्ट किया। यहाँ पर प्रयुक्त उपमा का अर्थ है कि संस्थान स्वयं दिव्य है और उसमें वही विशेषताएं हैं जो भगवान में हैं जिनके विभिन्न अंशावतार एवं कलावतार उनसे अभिन्न हैं। अतः गौडीय मठ और अन्य शाखा मठ आध्यात्मिक रूप से पितृ मठ के समान हैं और आपस में भी एक-दूसरे के समान हैं।

और अब (हार्मो. 28.5:131)

> गौडीय मठ अपने संस्थापकाचार्य के ही समान है। कृष्णकृपामूर्ति के सहयोगी, अनुयायी एवं उनका निवास उनके अंग हैं। उनमें से कोई भी इस इकलौते व्यक्ति के पूर्ण अधीनस्थ अंग होने के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं करता। मुखिया के प्रति यह बिना शर्त, अहैतुक एवं अनायास समर्पण अधीनस्थ अंगों की नेतृत्व की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए न केवल अनुकूल है, अपितु अनिवार्य है।

इस पूरे लेख में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को 'आचार्य' बताया गया है पर इस एक संस्थान पर, जहाँ अपने (समान आध्यात्मिक) संस्थान के साथ उनके आध्यात्मिक सम्बंध की व्याख्या की गई है, उनको स्पष्ट रूप से 'संस्थापकाचार्य' का सम्मान दिया गया है। ये वे 'मुखिया' हैं जिनको उनकी सेवा में लगे सभी मानव व भौतिक संसाधनों से मिलकर बना यह संस्थान अपने अस्तित्व, नेतृत्व तथा विकास का पूरा श्रेय देता है। इन परिस्थितियों में, संस्थान अपने संस्थापकाचार्य से अभिन्न हैं।

दूसरी किश्त में, 'द गौडीय मठ' संस्थान की संरचना एवं कार्य के आध्यात्मविद्या के वर्णन पर लौट आता है। (हार्मो. 28.6:165):-

> गौडीय मठ की सारी कार्यशीलता श्री श्रीमद परमहंस श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज से आती है जो श्री रूप गोस्वामी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं जिन्हें श्री चैतन्य देव ने सब जीवों के कल्याण के लिए प्रेमाभक्ति की विधि को समझाने के लिए मूल रूप से प्राधिकृत किया था। गौडीय मठ की सम्पूर्ण गतिविधि का अस्तित्व आचार्य की पहल पर ही आधारित है। श्रीधाम मायापुर का श्री चैतन्य मठ गौडीय मठ के उद्‍गम का रहस्योद्‍घाटन करता है। आचार्य परमभ. ागवान श्रीकृष्ण चैतन्य के साथ शाश्वत रूप से उनके दिव्य धाम, श्वेतद्वीप, श्रीधाम मायापुर में निवास करते हैं। वहाँ से आचार्य जीवात्माओं को माया के पाश से मुक्त करने तथा उन्हें

> श्रीश्रीराधागोविन्द के श्री चरणों की प्रेमाभक्ति देने के लिए इस भौतिक धरातल पर प्रकट होते हैं। श्री चैतन्य मठ की शाखाएं विश्व के सभी भागों में जीवात्माओं के कल्याण हेतु कृपा वितरण केंद्र के विस्तार हैं। गौडीय मठ की वास्तविक प्रकृति तथा आचार्य की कृपा को अनुभव करने के लिए श्रीधाम मायापुर के साथ सम्बंध को मानना अनिवार्य है।[26]

यह ध्यान देने योग्य है कि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को इंगित करने के लिए संस्थापकाचार्य शब्द का प्रयोग 'द हार्मोनिस्ट' के पृष्ठों में दूसरी बार हुआ है। 24 दिसम्बर, 1936 के अंक में (हार्मो. 33.4:90-96) 'द गौड़ीय मठ' इस शीर्षक से छपे लेख में, जिसमें इस बार इसके लेखक प्रो. निशिकांत सन्याल एम. ए. का नाम स्पष्ट रूप से दिया गया था, ये शब्द आते हैं--"गौडीय मठ श्री श्रीमद परमहंस परिव्रजकाचार्य श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज का उपकरण एवं प्रतिरूप है। यह संस्थापकाचार्य[27] में ही रहता है, चलता है तथा उन्हें में समाविष्ट है।" इन शब्दों के छपने के एक सप्ताह पश्चात भक्तिसिद्धांत सरसवती ठाकुर ने यह जगत छोड़ दिया।

सार रूप में हम देखते हैं कि यह विशिष्ट शब्द संस्थापकाचार्य 'श्रीकृष्ण चैतन्य' पुस्तक में उन चार मूल शिक्षकों के लिए आता है जिन्होंने आदिक.ालिक पुरातन ज्ञान सीधे भगवान से प्राप्त किया और कलियुग के इस पतित एवं अपमानजनक वातावरण में उसे बिना किसी विकृति या ह्रास के, स्थायी संचार के लिए पुनर्जीवित एवं सम्पादित किया। अपनी शिक्षाओं को अपने

---

[26] धर्म विज्ञान के इसी सिद्धांत की पुनरुक्ति हम लगभग पांच वर्ष पश्चात 'द हार्मोनिस्ट' में पाते हैं (15 मार्च 1935)। 'श्रीधाम मायापुर' नामक शीर्षक से छपे एक लेख में (हार्मो 32.14 : 313-315) पितृ मूल मठ को श्री चैतन्य मठ मायापुर से श्री गौडीय मठ कलकत्ता में पुनस्थापित करने के प्रस्ताव को, जो प्रत्यक्षत: एक न्यायोचित पूछताछ जैसा ही लगता था। इस आधार पर दृढ़ता से नकार दिया जाता है कि श्रीधाम मायापुर एक अवतरित पवित्र धाम है और कलकत्ता का गौडीय मठ तथा विश्व भर में मिशन के अन्य मठों के स्थानीय अस्तित्व का आध्यात्मिक आधार केवल यही है कि वे सब श्रीधाम मायापुर की सेवा हेतु प्रशिक्षण केंद्र हैं।

[27] यहाँ पर लेखक ने ईसाई बाइबल से जाने माने एक सूत्रोक्ति का उपयोग किया है : "क्योंकि हम उसी में (भगवान में) रहते हैं, चलते हैं तथा समाविष्ट हैं..." (ॲक्ट 17.28)

स्वयं के अनुभूत ज्ञान से अनुप्राणित करके उन्होंने आने वाली पीढ़ियों को चिंतन, अनुभव एवं कर्म करने का एक मानक ढांचा तथा विशिष्ट सुरक्षा शक्ति प्रदान की।[28]

प्रोफेसर सन्याल अभी 'श्रीकृष्ण चैतन्य' पुस्तक छापने का प्रयास ही कर रहे थे कि भव्य कलकत्ता मंदिर का उद्घाटन हुआ। मंदिर को इस पुस्तक की ही भांति विश्वभर में प्रचार अधिनियम के एक अंग के रूप में ही देखा गया। उद्घाटन रीति-रिवाजों के भाव के रूप में 'द हार्मोनिस्ट' में श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के संस्थान की एक अधिकारिक धार्मिक सिद्धांत सम्बंधी व्याख्या छपी। इस अवसर पर यह महत्वपूर्ण है कि 'श्रीकृष्ण चैतन्य' के लेखक ने श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती के चरित्र-चित्रण में 'संस्थापकाचार्य' शब्द का प्रयोग किया। विशेषकर उनके नजदीकी कामकाजी सम्बंधों के दृष्टिगत, शिष्य ऐसा निर्णायक कदम केवल अपने गुरु एवं प्रधान सम्पादक की सहमति से ही ले सकते थे।

भिन्नताओं के बावजूद, लोहयुग के चार संस्थापकाचार्यों और गौडीय मिशन के आचार्य के बीच समानताएं स्पष्ट हैं। चार सम्प्रदाय-आचार्यों के मामले में प्रारंभिक दिव्य दैवी संदेश प्रागैतिहासिक काल में प्राप्त हुआ, परंतु गौडीय सम्प्रदाय के मामले में भगवान चैतन्य द्वारा दिया गया दिव्य संदेश पहले की तुलना में अधिक नजदीक के ऐतिहासिक समय में दिया गया, परंतु भगवान की सीधी कृपा से ज्ञान प्राप्त करने वाले 'मूल प्रागैतिहासिक शिक्षकों' के मैत्रीय समतुल्य आचार्य छः गोस्वामी हैं। षड् गोस्वामियों को भगवान चैतन्य द्वारा ज्ञान दिए जाने तथा चतुर्मुख ब्रह्मा को भगवान कृष्ण द्वारा ज्ञान दिए जाने के बीच समानता का श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी को स्पष्टता ज्ञात थी।

[28] श्रील प्रभुपादः "आचार्य भगवान के चरणों रूपी नाव को स्वीकार करने के द्वारा अज्ञान के सागर को पार करने की विधि बताते हैं और यदि इस विधि का दृढ़ता से पालन किया जाए तो भगवान की कृपा से इसके अनुयायी अन्ततः गंतव्य पर पहुंचेंगे।" यह विधि 'आचार्य सम्प्रदाय' कही जाती है। इसलिए कहा गया है—"सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः" (अधिकारिक परम्परा के बिना लिया गया मंत्र निष्फल होता है) (पद्म पुराण) आचार्य-सम्प्रदाय एकदम प्रामाणिक हो जाता है। अतः व्यक्ति को आचार्य-सम्प्रदाय को ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा उसके प्रयास विफल होंगे। (भागवतम् 10.2.31 तात्पर्य)

> इस भौतिक ब्रह्माण्ड की उत्पति से पहले भगवान ने ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टिसृजन एवं वैदिक ज्ञान को प्रकाशित किया। ठीक उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की वृन्दावन लीलाओं को पुनर्जीवित करने के लिए चिन्तित भगवान चैतन्य ने रूप गोस्वामी के हृदय में 'निजशक्ति' का संचार किया। इस शक्ति के द्वारा श्रील रूप गा. ेस्वामी भगवान कृष्ण की लगभग भूली जा चुकी वृन्दावन लीलाओं को पुनर्जीवित कर पाए। इस प्रकार उन्होंने विश्व भर में कृष्ण भावना मृत का प्रचार किया। (चै.च मध्य 19.1)

और भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर स्वयं ने भी एक दुर्बल पड़ी परम्परा को पुनर्जीवित एवं परिष्कृत करके तथा एक ऐसे संघ का निर्माण करके जिसमें उनकी आत्मा व्याप्त थी और जिसमें संस्थापक की भगवान की कृपापूर्ण इच्छओं को पूर्ण करने की उत्कृष्ट अभिलाषा निहित थी, उन चार संस्थापकाचार्यो के समान ही कार्य किया। चार सम्प्रदाय आचार्यो ने दृढ़तापूर्वक निर्विशेष अद्वैतवाद का खंडन किया, वेदों के वास्तविक आस्तिक सिद्धांत को पुनर्स्थापित किया और इस सिद्धांत का समूचे भारतवर्ष में पूरी शक्ति से प्रसार किया। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने भी ऐसा ही किया। इतना ही नहीं भक्तिसिद्धांत स्वस्वती ठाकुर तो अपने संसाधनों का संचय इससे भी आगे जाने के लिए कर रहे थे। यह था चार सम्प्रदाय आचार्यों की शिक्षाओं का संयोग अचिन्त्य भेदाभेद तत्व का पूरे विश्व में प्रचार प्रसार करना।

परंतु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के शरीर छोड़ने के पश्चात दुर्भाग्य से उनके संस्थान में भी उनकी शारीरिक उपस्थिति से कहीं अधिक उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति का ह्रास हुआ। इसके परिणामस्वरूप गौडीय मिशन सम्पूर्ण विश्व के लोगों के कल्याण के लिए भगवान के कृपावितरण केंद्रों का विस्तार कार्यालय बनने की क्षमता से वंचित हो गया।

फलस्वरूप श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर का सेवक, अपने स्वामी के आदेश का पालन करने के लिए और उनकी अभिलाषा पूर्ति हेतु उनके अभियान को आगे बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का संस्थापकाचार्य बन गया। उनकी सजग उपस्थिति हमारे बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी

तब तक बनी रहेगी जब तक हम प्रत्येक स्थिति में उनके अविचल दास बने रहेंगे जैसा कि उन्होंने अपने स्वयं के जाज्वल्यमान उदाहरण से दिखाया।

हम हमारी परम्परा में बहुत से महान आचार्यों से सीखते हैं और उनका सम्मान करते हैं। परंतु इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के रूप में श्रील प्रभुपाद हमारे लिए उन सब में से विशेष हैं। इस्कॉन में श्रील प्रभुपाद स्वयं प्रत्येक इस्कॉन भक्त के जीवन में सर्वव्यापी प्रमुख शिक्षा गुरु तथा नित्य मार्गदर्शक एवं सजग निर्देशक के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार वे इस्कॉन की आत्मा हैं। अतः जब तक इस्कॉन उनकी इच्छा की मुक्तिसंगत अभिव्यक्ति और एकीकृत उपकरण बना हुआ है तब तक श्रील प्रभुपाद स्वयं इस विश्व में प्रभावपूर्ण ढंग से काम कर रहे हैं। इस प्रकार श्रील प्रभुपाद इस्कॉन की आत्मा हैं और इस्कॉन उनका शरीर।

श्रील प्रभुपाद उपस्थित हैं, जब श्रील प्रभुपाद हमारे बीच थे तो उन्होंने हमें स्पष्ट दिशा-निर्देश दिये ताकि भविष्य में उनकी शारीरिक अनुपस्थिति के समय हमारा उनसे संग बना रहे। हम इन निर्देशों का विस्तृत वर्णन श्रीमद भागवतम् के चौथे स्कंध में प्राप्त करते हैं, जहाँ श्रील प्रभुपाद राजा पुरंजन के विषय में नारद के रूपकमय वृतान्त के अंतर्गत रानी वैदर्भी की अपने पति की मृत्यु पर प्रतिक्रिया की व्याख्या करते हैं प्रभुपाद समझाते हैं-

> प्रतीकात्मक अर्थ के अनुसार रानी को राजा का शिष्य माना जाता है, इसलिये गुरु का नश्वर शरीर छूटने पर शिष्य को ठीक वैसे ही क्रंदन करना चाहिए जैसे राजा का शरीर छूटने पर रानी करती है। परंतु गुरु और शिष्य कभी जुदा नहीं होते क्योंकि जब तक शिष्य गुरु के निर्देशों का दृढ़ता से पालन करता रहता है तब तक गुरु हमेशा शिष्य के साथ होते हैं। यह वाणी का संग कहा जाता है। शारीरिक उपस्थिति वपुः कहलाती है। जब तक गुरु शरीर में रहते हैं, तब तक शिष्य को गुरु की शारीरिक सेवा करनी चाहिए और जब वे शरीर छोड़ दें तो उसे उनके

निर्देशों का पालन करना चाहिए।[29]

रानी अपने पति की चिता में सती होने की तैयारी करती है। प्रभुपाद के अनुसार उसका मंतव्य शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक अपने गुरु के आदेश के पालन के निश्चय को दर्शाता है। उसके पश्चात रानी के पास एक पुराने मित्र के रूप में एक विद्वान ब्राह्मण आता है और उसे सांत्वना तथा दिशानिर्देश देता है। प्रभुपाद कहते हैं कि रूपक शैली में ब्राह्मण परमात्मा को दर्शाता है। प्रभुपाद आगे लिखते हैं--

> जब व्यक्ति गुरु के निर्देश का पालन करने में गंभीर हो जाता है तो उसका निश्चय परम भगवान के दर्शन करने के समान माना जाता है। जैसा कि पहले समझाया गया है, इसका अर्थ है गुरु के निर्देश में परम भगवान के दर्शन करना। तकनीकी रूप से यह वाणी सेवा कही जाती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भगवद्गीता के श्लोक व्यवसायात्मिका बुद्धि एकेह कुरुनन्दन, (गीता 2.41) की अपनी व्याख्या में कहते हैं कि व्यक्ति को गुरु के वाणी की सेवा करनी चाहिए। शिष्य को गुरु के आदेश का सख्ती से पालन करना चाहिए। केवल इसी मार्ग का अनुसरण करके व्यक्ति भगवान के दर्शन कर लेता है...
>
> सारांश यह है कि यदि शिष्य गुरु के निर्देश को लागू करने में अति गंभीर है तो वह तत्काल वाणी या वपु से परम भगवान का संग करता है। परम भगवान के दर्शन के लिए सफलता का राज यही है।[30]

अगले श्लेक पर टिप्पणी करते हुए श्री प्रभुपाद श्रद्धावान शिष्य एवं गुरु के मध्य इस अनतिक्रम्य सम्बंध के विषय में और आगे समझाते हैं :

> जो निश्छल एवं पवित्र है उसे परम भगवान से विचार विमर्श का अवसर उनके सबके हृदय में स्थित परमात्मा स्वरूप में

[29] श्रीमद्भागवतम् 4.28.47 तात्पर्य

[30] श्रीमद्भागवतम् 4.28.51 तात्पर्य

> मिलता है। परमात्मा हमेशा ही चैत्यगुरु अर्थात अंदर के गुरु होते हैं और वे बाह्य रूप से निर्देशक एवं दीक्षा गुरु के रूप में सामने आते हैं। भगवान हृदय के भीतर भी रह सकते हैं और वे बाहर व्यक्ति के सामने आकर उसको निर्देश भी दे सकते हैं इस प्रकार गुरु हृदयस्थ परमात्मा से अभिन्न होता है...
>
> जब ब्राह्मण ने उस स्त्री से पूछा कि फर्श पर पड़ा व्यक्ति कौन हे तो उसने उत्तर दिया कि वे उनके गुरु हैं, और वह किंकर्त्तव्यविमूढ थी कि उनकी अनुपस्थिति में क्या किया जाए। यदि भक्त गुरु के निर्देशों का पालन करके हृदय से शुद्ध हो चुका हो तो ऐसे समय में परमात्मा तुरंत प्रकट हो जाते हैं। गुरु के आदेशों का पालन करने वाला निश्छल भक्त निश्चित रूप से उसके हृदय में स्थित परमात्मा से सीधे निर्देश प्राप्त करता है। इस प्रकार एक निश्छल भक्त की गुरु एवं परमात्मा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं।

हमें सावधानीपूर्वक ध्यान देना चाहिए कि इस्कॉन में श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति एक वस्तु पर आधारित है और वह है उनके वचनबद्ध अनुयायियों का उनके अभियान को सफल बनाने के प्रति समर्पण। श्रील प्रभुपाद ने यहाँ हमें 'सफलता का रहस्य' बताया है। हमें इस भेंट को स्वीकार करके इसे सुरक्षित रखना चाहिए।

इस्कॉन की आत्माः कैरकस में 21 फरवरी, 1975 को श्रीमद् भागवतम् के पहले श्लोक पर प्रवचन करते हुए श्रील प्रभुपाद ने एक रहस्योद्घाटक उदाहरण दिया। यह उनका मुख्य विषय नहीं था वरन् चलते-चलते एक उदाहरण दिया गया था। फिर भी यह व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करता है—

> तो यहाँ यह कहा गया है कि जीवन मूल है, क्योंकि यहां कहा गया है— यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट" (वह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सब प्राकट्यों से अवगत है तथा वह स्वतंत्र है) जैसे यदि मुझे इस कृष्णभावनामृत आंदोलन का मूल (जनक) माना जाए तो इसका अर्थ है कि मैं इस आन्दोलन के

> विषय में सब कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ। यदि मैं इस आन्दोलन के विषय में सब कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता तो मुझे संस्थापक-आचार्य नहीं कहा जा सकता। और ज्योहि मूल ज्ञाता बन जाता है, वह जीवन है। अत: निर्जीव पदार्थ हर वस्तु का ज्ञाता नहीं हो सकता।

जैसे श्रील प्रभुपाद इस्कॉन की आत्मा है, वैसे ही इस्कॉन उनका शरीर है।[31] और चूंकि यह संयुक्तिकरण आध्यात्मिक है, अत: शरीर शरीरी से अभिन्न है। इसी संदर्भ में सिद्धांत (जैसा पहले देखा गया) 'द हार्मोनिस्ट' में पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका था:

> गौड़ीय मठ... अपने संस्थापक आचार्य से अभिन्न है। कृष्णकृपामूर्ति के सहयोगी, अनुयायी और उनका निवास स्थान उनके अंग हैं। उन में से कोई भी इस अकेले व्यक्ति का पूर्णतया अधीनस्थ अंग होने के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं करता।

लगभग चार दशक पश्चात् हम श्रील प्रभुपाद को राम राय को लिखे एक पत्र में इसी सिद्धांत को देते हुए पाते हैं। (पत्राचार वेदाबेस: जनवरी 11, 1968)

> तुमने बिल्कुल सही कहा है कि मैं तुम्हारा जीवन हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम मेरे शरीर हो और इस प्रकार न ही जीवन और न ही शरीर को अलग किया जा सकता है क्योंकि आध्यात्मिक धारातल पर ऐसा कोई भेद नहीं है। भौतिक

[31] यह बयान कि 'इस्कान मेरा शरीर है', बार बार स्वयं श्रील प्रभुपाद की एक टिप्पणी के रूप में उद्धृत किया गया है। (उदाहरण के लिए, द्रविड दास द्वारा 1986 व्यास पूजा पुस्तक की भूमिका और 1986 में चीन से व्यास पूजा भेंटें, 1987 में गणपति दास स्वामी, 1991 में कीर्तिराज दास तथा 1995 में नित्योदित स्वामी की व्यास पूजा भेंटें देखें। 1997 की एक व्यास पूजा भेंट में तमाल कृष्ण गोस्वामी भावपूर्वक श्रील प्रभुपाद के इस 'प्रसिद्ध वक्तव्य' पर विचार करते हैं और अगले साल गिरिराज स्वामी अपनी श्रद्धांजलि में लिखते हैं - ''हम सब ने आपकी प्रसिद्ध कहावत 'इस्कॉन मेरा शरीर है' सुनी है।'') परन्तु हमारे पास वर्तमान में इस कथन का कोई सीधा प्रमाण उपलब्ध नहीं है। फिर भी हम 'द हार्मोनिस्ट' में प्रस्तुत 'संस्थापकाचार्य' शब्द के अर्थ को समझ कर इस वक्तव्य की सच्चाई को स्वीकार कर सकते हैं।

> धरातल पर कभी कभी जीवन (प्राण) शरीर से अलग हो जाता है परन्तु परम धरातल पर ऐसा कोई भेद नहीं है।

संस्थापकाचार्य की आत्मा के निवास से जीवन्त इस्कॉन इस विश्व में भगवान महाप्रभु की आध्यात्मिक शक्ति का मूर्त रूप है। इस प्रकार श्रील प्रभुपाद द्वारा अनुप्राणित एक सत्ता के रूप में इस्कॉन स्वयं एक चिरस्थायी सामाजिक प्राणी बन जाता है। एक सजीव प्राणी की भाँति यह अपने व्यष्टि तत्वों, इसके सदस्यों तथा उपसमूहों, की विविधता का आंलिगन करता है और उन्हें घेर कर एक दिव्य संघ का रूप देता है जिसमें प्रत्येक विशिष्ट तत्व सम्पूर्ण की संकेन्द्रित एकता को मूल्यवान वस्तु की भांति संजोकर रखता है, जबकि संकेन्द्रित सम्पूर्ण इसके प्रत्येक भाग की विशिष्ट वैयाक्तिकता का सम्मान करता है। इस प्रकार इस्कॉन वैष्णव परम्पराओं में अनुभूत देवत्व के चरम सिद्धांत 'विविधता में एकता'[32] का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस्कॉन में इसके क्रियान्वयन की सर्वोच्य आवश्यकता पर बल देते हुए श्रील प्रभुपाद समझाते हैं कि 'इसकी सफलता सहमति पर कैसे निर्भर है। (वेदाबेस कीर्तनन्द को पत्र, 18 अक्टूबर 1973)

> विशेषकर इस कलियुग में भौतिक प्रकृति का अर्थ है मतभेद एवं असहमति। परन्तु वचनबद्धताओं की विविधता के बावजूद इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन की सफलता सहमति पर निभ: िर होगी। भौतिक जगत में विविधाताएँ हैं परन्तु सहमति नहीं है। आध्यात्मिक जगत में भी विविधताएँ हैं पर सहमति है। दोनों में यह अन्तर है। भौतिकतावादी व्यक्ति विविधताओं और अहसहमतियों को ठीक न कर पाने के कारण प्रत्येक वस्तु को शून्य बना देता है। वे विविधताओं के मध्य सहमति नहीं बना

[32] परमभगवान जीवात्माएं, भौतिक शक्ति, आध्यात्मिक शक्ति और सम्पूर्ण सृष्टि सब व्यष्टि तत्व हैं। परन्तु अन्त में वे सब मिलकर परम, भगवान को बनाते हैं। (उनके अवयव हैं) इसलिए जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत हैं, वे विविधता में एकता को देखते हैं, (भगवतम् 6.8.32)। चैतन्य चरितामृत मध्यलीला 10.113 के तात्पर्य में प्रभुपाद कहते हैं कि "विविधता में एकता का सिद्धांत दार्शनिक रुप से अचिंत्य भेदाभेद अर्थात् साथ ही साथ एकता तथा भिन्नता कहलाता है।"

सकते परन्तु यदि हम कृष्ण को केन्द्र में रखते हैं तो विविध ताओं में सहमति हो जाएगी। इसे 'विविधता में एकता' कहा जाता है। अतः मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हमारे सब लोग प्रति वर्ष भगवान चैतन्य महाप्रभु के जन्म की वर्षगांठ के समय मायापूर में मिलें। सभी जी.बी.सी. व वरिष्ठ लोगों की उपस्थिति में हमें विविधता में एकता लाने पर चर्चा करनी चाहिए। परन्तु यदि हम विविधता के कारण लड़ते हैं तो यह केवल भैतिक धरातल है। कृपया विविधता में एकता के दर्शन को बनाए रखने का प्रयास करें। यह हमारे आन्दोलन को सफल बनाएगा।

प्रभुपाद द्वारा इस्कॉन की स्थापना के कारण

जब श्रील प्रभुपाद ने भगवान चैतन्य के आन्दोलन को एक विश्व प्रचार अभियान के रूप में सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया तो उन्होंने एक नई संस्था, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) बनाने का एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया और इसके संस्थापकाचार्य वे स्वयं बने। ऐसा उन्होंने अपने अनुभूत ज्ञान के आधार पर किया जिसका सार तत्व उन्होंने अपने गुरु से ग्रहण किया था। दुर्भाग्य से उनके गुरु महाराज के देहावासान के पश्चात् उस ज्ञान एवं अनुभूति की अभिव्यक्ति उनके गुरु के अपने संस्थान में जो अब खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया था, लगभग बंद हो गई थी। अतः प्रभुपाद ने एक नई संस्था की नींव रखी जो सम्पूर्ण रूप में तथा इसके प्रत्येक भाग में उस अनुमति को सम्मिलित एवं विक. सित करेगी जो अपने आपको कष्ट झेल रही मानवता के बीच भगवान का शुद्ध प्रेम वितरीत की स्थिर एवं अथक वचन-बद्धता के रूप में प्रदर्शित करेगी।

एक नया संस्थान - श्रील प्रभुपाद अपने गुरु के प्रत्यक्ष आदेश की पूर्ति हेतु अमरीका गए थे। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती महाराज ने दो अवसरों पर अपने शिष्य अभय चरणारविंद दास को विशेष रूप से अंग्रेजी भाषी लोगों

के बीच प्रचार करने का आदेश दिया। अभय ने यह निर्देश 1922 में श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर से पहली ही भेंट में प्राप्त किया। और 1936 में उन्होंने अपने गुरु के साथ अन्तिम पत्राचार में इसे डाक द्वारा प्राप्त किया इस समय तक श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने गौड़ीय मठ के अविरल एवं शक्ति सम्पन्न अभियान, जिसके अन्तर्गत प्रचारकों को 1933 में इंग्लैंड भेजा गया था, को कमजोर पड़ते देख लिया था।[33] परन्तु अपने शिष्य को उनका आदेश यह स्पष्ट करता है कि उनके निश्चय में कोई। कमी नहीं आई थी।

अपने स्वामी के पावन आदेश की पूर्ति के लम्बे व सतत परिवर्तनशील मार्ग में श्रील प्रभुपाद ने अपने सृजनात्मक प्रयासों की रूपरेखा सावधानी पूर्वक श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर द्वारा 1920 एवं 1930 के दशकों में गौड़ीय मठ के संदर्भ में प्रस्तुत उदाहरण के आधाार पर बनाई। इस साहसिक यात्रा के मार्ग में 1944 में अंग्रेजी भाषा में 'बॅक टू गॉडहेड' पत्रिका का आरम्भ, 1962-65 में श्रीमदभागवतम् के प्रथम स्कन्ध का तीन खण्ड़ों में प्रकाशन, 1966 में न्यूयार्क शहर में इस्कॉन की स्थापना, 1969 में जर्मनी तथा इंग्लैंड में इस आन्दोलन की स्थापना और 1970 में भगवान चैतन्य के आन्दोलन की भारत में नवयौवन के साथ वापसी आदि मील के पत्थर भी आए। ऐतिहासिक रिकॉर्ड उस श्रद्धापूर्ण सम्मान तथा सतर्क ईमानदारी का मर्मस्पशी साक्ष्य प्रस्तुत करता है जिसके साथ श्रील प्रभुपाद ने अपने गुरु के उदाहरण को श्रद्धांजलि दी।

श्रील प्रभुपाद का साहित्यिक उत्पादन उनकी इस ईमानदारी को दर्शाता है: 1927 में सज्जन-तोषणी का 'द हार्मोनिस्ट' के रूप में कायाकल्प करके श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने विश्वव्यापी प्रचार हेतु पूर्वाभ्यास आरम्भ कर दिया था। इन्ही पद चित्रों का अनुकरण करते हुए श्रील प्रभपाद ने 'बॅक टू गॉडहेड'[34] का प्रकाशन आरम्भ करके विश्वमंच पर अपने संभावित प्रवेश की तैयारी आरम्भ की। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने शिक्षित यूरोपवासियों को गौड़ीय वैष्णव शिक्षाओं की महानता तथा उनमें निहित अगाध ज्ञान के

[33] भक्ति विकास स्वामी: गौड़ीय मठ की अब तक की गतिविधियों का चरमोत्कर्ष 1933 में प्रचारकों को पश्चिम में भेजने के साथ हुआ। (श्री.भ.वै. 1:108)

[34] द हार्मोनिस्ट का प्रकाशन 1937 में बंद हो गया था।

विषय में समझाने के लिये एक आधिकारिक अंग्रेजी पुस्तक, तीन खण्डों में प्रस्तावित श्रीकृष्ण चैतन्य पुस्तक छापने के लिए निशिकान्त सन्याल के साथ निकट से सहयोग किया। इस कार्य को इतना अनिवार्य माना गया कि 1933 के प्रचारक पहले खण्ड की प्रति साथ लिए बिना जहाज पर नहीं चढ़े। तीन दशकों बाद श्रील प्रभुपाद ने अकेले ही इस काम को पुन: हाथ में लिया और 1960 से 1965 के बीच का समय श्रीमद् भागवतम् के प्रथम स्कन्ध को तीन खण्ड़ों में लिखने, धन एकत्र करने, मुद्रण, प्रकाशन एवं प्रत्येक खण्ड की 1100 प्रतियों के वितरण में लगाया। वे कलकत्ता से बाहर तब तक नहीं गए जब तक उनके पास साथ ले जाने के लिए श्रीमदभागवतम् की प्रतियों से भरी हुई एक लौहे का सन्दूक नहीं था।

श्रील प्रभुपाद न्यूयॉर्क में अकेले और निराश्रय पहुंचे, परन्तु उन्होंने तत्काल मैन्हटन में मन्दिर के लिए एक सम्मानजनक सम्पत्ति खरीदने का प्रयास आरम्भ कर दिया। इस कार्य को दी गई वरीयता भी भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने उस प्रयास की पुनरावृत्ति करती है जिसमें उन्होंने लंदन में एक सुन्दर मन्दिर[35] बनाने के लिए काफी, परन्तु असफल प्रयास किया था। बहुत से अन्य अवसरों की भांति, इस घटना में भी रिकार्ड इस बात का काफी साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि उनके गुरु के पूर्वगामी उत्कृष्ट आचरण ने श्रील प्रभुपाद का कितना निकट से मार्गदर्शन किया।

---

[35] 1 अक्टूबर 1935 को यूरोपीय धर्मप्रचारकों के मुखिया भक्ति हृदय 'बोन महाराज' ने त्रिपुरा के महाराजा से एक औपचारिक भेंट की। इस अवसर का उल्लेखित विवरण 7 नवम्बर 1935 के 'द हार्मोनिस्ट' में ''लंदन में पहला हिन्दू मंदिर'' शीर्षक के साथ छपा। इसमें हमने पढ़ा: ''स्वामी जी (बोन महाराज) ने तब इंग्लैंड व केन्द्रीय यूरोप में गौड़ीय मठ की गतिविधियों की चर्चा की और महाराजा को गौड़ीय मठ प्रमुख तथा अपने गुरु महाराज की लंदन में पहला हिन्दू मंदिर व भारत की आधयात्मिक संस्कृति के पश्चिम में प्रचार-प्रसार के लिए एक घर बनाने की इच्छा से अवगत कराया। महाराजा ने सदय हृदय से स्वामी जी के प्रस्तावों को सुना तथा दोपहर बाद प्रसन्नतापूर्वक उनको सूचित किया कि वे लंदन में गौड़ीय मठ का मन्दिर बनाने का पूरा खर्च वहन करेंगे...'' परन्तु एक वर्ष पश्चात् भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर बोन महाराज से अत्यन्त रूष्ट हो गए और उन्हें लंदन से वापिस बुला लिया (और उनके लौटने पर उनसे मिलने से भी मना कर दिया) और त्रिपुरा के महाराजा को पत्र लिखकर उन्हें बोन महाराज को आगे और धन देने से रोक दिया। (श्री.भ.वै. 2:302)

इतनी स्वामीभक्ति के संदर्भ में श्रील प्रभुपाद का एक महत्वपूर्ण कार्य, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना करके अपने गुरु द्वारा स्थापित संस्थान की छत्र-छाया से बाहर रहकर अपने प्रयास जारी रखने का उनका निर्णय, स्पष्ट रूप से एक असंगति जैसा लगता है। इसके पश्चात इस्कॉन की स्थापना के दो वर्ष के भीतर ही इसके संस्थापक ने वह विशिष्ट मानद पदवी ''श्रील प्रभुपाद'' भी स्वीकार कर ली जो उनके अपने गुरु प्रयोग करते रहे थे। इन दोनों कार्यों की कभी कभी उनके गुरुभाइयों ने कटु आलोचना की। परन्तु इस उपक्रम की, जो एक प्रकार से महाप्रभु के अभियान को पुनर्जीवित करके उसे फिर से स्थापित करने जैसा है, गहराई से जांच करने पर पता चलता है कि यह स्वामी भक्ति (ईमानदारी) का एक अनुकरणीय नमूना है। इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता था।

वास्तव में श्रील प्रभुपाद ने अपने अब तक के पश्चिम में बिना किसी सहायता के धर्म-प्रचार के प्रयास को गौड़ीय मठ के तत्वाधान में ही चलाने का प्रस्ताव रखा था। चैतन्य मठ मायापुर के तत्कालीन प्रमुख तथा अपने गुरुभ्राता भक्ति-विलास तीर्थ महाराज को 8 नवम्बर 1965 को न्यूयॉर्क से लिखे अपने पत्र में इस मामले में सहयोग करने की प्रार्थना की। कुंज बिहारी दास के नाम से दीक्षित हुए भक्ति विलास तीर्थ महाराज पहले रामकृष्ण मिशन के अंतर्गत कार्य करते थे और उनकी सांसारिक योग्यता एवं प्रबंधान में निपुणता को देखकर भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने उनको सम्पूर्ण गौड़ीय मठ संस्थान का सचिव एवं पर्यवेक्षक बना दिया था।[36] श्रील प्रभुपाद का पत्र विस्तारपूर्वक उधृत करने के योग्य है:

> मैं यहाँ पर हूँ और मैं देख रहा हूँ कि यहां प्रचार करने का अच्छा अवसर है परन्तु आदमियों और धन के बिना मैं यहाँ अकेला हूँ। यहाँ पर केन्द्र स्थापित करने के लिए हमारे पास अपने भवन होने चाहिए। रामकृष्ण मिशन या अन्य जो भी

[36] भक्ति विलास तीर्थ महाराज से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण हेतु (श्री.भ.वै. 2:232-339) देखें। इसके साथ यह जोड़ा जाना चाहिए कि श्रील प्रभुपाद के अनुसार तीर्थ महाराज की अनधिकृत कार्यवाही ने ही गौड़ीय मठ के विभाजन का सुत्रपात किया (वेदाबेस, वार्तालाप, मुंबई 23 सितम्बर 1973)

मिशन यहाँ काम कर रहे हैं उन सबके पास उनके अपने भवन हैं। अत: यदि हम यहाँ केन्द्र स्थापित करना चाहते हैं तो हमारे पास भी अपना भवन होना चाहिए। अपना भवन रखने का अर्थ है कम से कम पाँच लाख रुपया या एक लाख डॉलर अदा करना। और नये साज-सामान से घर को सुसज्जित करेन का अर्थ है और दो लाख रुपये का खर्च। यदि प्रयास किया जाए तो यह धन जुटाया भी जा सकता है। परन्तु मैं सोचता हूँ कि यहाँ पर मठ एवं मन्दिर स्थापित करने की जिम्मेवारी आप ले लें और मैं उन्हें स्वावलम्बी बना दूंगा। मुद्राविनिमय में कठिनाई है और मैं समझता हूँ कि यदि आप चैतन्य मठ की एक शाखा (न्यूयॉर्क में) खोलने के लिए कोई विशिष्ट व्यवस्था नहीं करते तो धन का स्थानान्तरण कठिन होगा। परन्तु यदि आप बंगाल या केन्द्रीय सरकार की सहायता से ऐसा कर पाएं तो न्यूयॉर्क में तत्काल एक केन्द्र खोलने का यह अच्छा अवसर है . . . हमारे अपने घर के बिना अपना केन्द्र खोलना सम्भव नहीं होगा। मुझे इसे में बहुत समय लगेगा पर आपके लिए यह बहुत आसान है। श्रील प्रभुपाद की कृपा से कलकत्ता के मारवाड़ी आपके हाथ में हैं। यदि आप चाहें तो न्यूयॉर्क में एक केन्द्र खोलने के लिए दस लाख रुपये आप तत्काल जुटा सकते हैं। एक केन्द्र खुलने पर मैं और भी कई केन्द्र खोल पाऊंगा। अत: यहां हमारे बीच सहयोग का एक अवसर है और यदि आप इस सहयोग के लिए तैयार हों तो यह जानकर मुझे बहुत खुशी होगी। मैं यहां पर स्थिति का अध्ययन करने आया था और मैंने पाया कि स्थिति बहुत अच्छी है। और यदि आप भी सहयोग करने के लिए सहमत हों तो यह श्रील प्रभुपाद की इच्छा से और भी अच्छा होगा।... यदि आप सहमत हों तो यह मान कर चलें कि मैं श्रीमायापुर चैतन्य मठ के कार्यकर्ताओं में से एक हूँ। मुझे किसी मठ या मंदिर का स्वामी बनने की कोई लालसा नहीं है परन्तु मैं कामकाजी सुविधाएं चाहता हूँ।

मेरी भगवतम् के प्रकाशन के लिए मैं दिन रात काम कर रहा हूँ और मुझे पश्चिमीं देशों में केन्द्रों की आवश्यकता है। यदि मैं न्यूयॉर्क में एक केन्द्र स्थापित करने में सफल हो जाता हूँ तो मेरा अगला प्रयास कैलिफोर्निया और मॉँट्रियल में केन्द्र खोलने का होगा... यहां पर काम करने की व्यापक सम्भावनाएं हैं परन्तु दुर्भाग्य से हमने आपसी लड़ाई में समय गंवाया है जबकि रामकृष्ण मिशन ने भ्रामक प्रस्तुति के द्वारा विश्वभर में पाँव जमा लिए हैं। यद्यपि वे इन विदेशों में अधिक लोकप्रिय नहीं हैं और उन्होंने केवल (लोकप्रिय होने का) प्रचार किया है और इसी प्रचार के कारण वे भारत में बहुत समृद्ध हो गए हैं जबकि गौड़ीय मठ के लोग भूखें मर रही हैं। अब हमें होश में आना चाहिए। यदि सम्भव हो तो आओ हम अपने अन्य गुरुभ्राताओं के साथ मिलकर संयुक्त रूप से गौर हरि के मत का प्रचार पश्चिमी देशों के प्रत्येक नगर एवं ग्राम में करें।

अगर आप मेरे उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसार मुझ से सहयोग करने को सहमत हों तो मैं अपने वीज़ा की अवधि बढवा लूंगा... अन्यथा मैं भारत वापस आ जाऊंगा। मुझे तत्काल मेरे साथ काम करने के लिए कुछ अच्छे सहायकों की आवश्यकता है। उन्हें शिक्षित एवं अंग्रेजी भाषा में बातचीत करने में सक्षम तथा संस्कृत पढ़ने में निपुण होना चाहिए। यहाँ पर प्रचार करने के लिए अंग्रेजी तथा संस्कृत दो भाषाओं का ज्ञान अति प्रशंसनीय होगा। मेरे विचार में आपके नेतृत्व में हमारे गुरुभ्राताओं का प्रत्येक शिविर इस काम के योग्य एक व्यक्ति दे और वे सब मेरे निर्देशन में कार्य करने को सहमत हों। यदि यह सम्भव हो जाता है तो आप देखेंगे कि हमारे प्रिय श्रील प्रभुपाद हम सब पर कितने प्रसन्न होंगे। मैं समझता हूँ कि अब हम सब को पुरानी भ्रातृघातक लड़ाई को भूल जाना चाहिए और एक अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आगे आना चाहिए। यदि वे सहमत न हों तो आप स्वयं ऐसा करें और मैं आपकी सेवा में हूँ।

23 नवम्बर को श्रील प्रभुपाद ने एक सम्पत्ति के वर्णन तथा तुरन्त अदा की जाने वाली राशि के साथ तीर्थ महाराज को पुन: लिखा: "...मैं समझता हूँ कि इस राशि की व्यवस्था आप तुरन्त कर सकते हैं और आपके श्री चैतन्य मठ की एक शाखा या फिर इस शाखा को न्यूयॉर्क गौड़ीय मठ का नाम देकर इसे तुरन्त आरम्भ कर सकते हैं।"

जब श्रील प्रभुपाद के पास मंदिर बनाने के लिए भारत में एक बड़े दान को प्राप्त करने का अवसर आया तो उन्होंने बोन महाराज व तीर्थ महाराज को धन अमेरिका स्थानान्तरित करने हेतु सरकारी अनुमति प्राप्त करने के लिए विशिष्ट एवं संभावनापूर्ण मार्ग लेने की प्रार्थना करते हुए पत्र लिखा। उन्होंने तीर्थ महाराज को लिखा:

> सब कुछ तैयार है, नाम के तौर पर घर तैयार है, दानदाता तैयार हे और मेरी तत्काल विनम्र सेवा भी तैयार है। अब आपने पूर्ण आहुति देनी है क्योंकि आप कृष्णकृपामूर्ति के सबसे प्रिय शिष्य है। मेरे विचार में श्रील प्रभुपाद चाहते हैं कि मुझ तुच्छ व्यक्ति के इस महान प्रयास में आपकी महान सेवा का भी योगदान हो।

इस अकस्मात उठी परिस्थिति में इन दो गुरुभ्राताओं से सहयोग ले पाने के ये साहसिक प्रयास निष्फल हुए। इसके एकदम विपरीत, मंगलनिलोय[37] नाम के एक नौजवान ब्रह्मचारी ने, जो उनके गुरुभ्राता का शिष्य था, श्रील प्रभुपाद के प्रयास की सराहना करने तथा उनकी सहायता करने की अपनी उत्सुकता जताने के लिए पत्र लिखा। परन्तु मंगलनिलय के गुरु माधव महाराज ने अपने शिष्य जैसा उत्साह नहीं दिखाया।

प्रभुपाद ने मंगलनिलय से कहा था कि वह भारत से धन के स्थानान्तरण के प्रयास की तरफ माधव महाराज का ध्यान दिलाए। परन्तु मंगलनिलय से प्राप्त उत्तर में प्रभुपाद को अनायास ही अपने एक और गुरुभ्राता के उनके विरुद्ध होने का पता चल गया। प्रभुपाद की अति रहस्योद्घाटनकारी प्रतिक्रिया

---

[37] यह श्रील प्रभुपाद का अक्षर विन्यास है जिसमें उसके संस्कृत के दीक्षित नाम मंगलनिलॉय दास में बंगला उच्चारण झलकता है। (श्रील प्रभुपाद लीलामृत में यह भक्त 'मुक्ति' के छद्म नाम से आता है)

यह थी। (वेदाबेसः पत्राचार, 23 जून 1966)

> मैंने इस (धन प्रेषित करवाने में सहायता) के लिए श्रीपाद बोन महाराज से प्रार्थना की परन्तु उन्होंने इंकार कर दिया। मैंने श्रीपाद तीर्थ महाराज से प्रार्थना की और पहले तो उन्होंने राष्ट्रपति एवं वित्तमंत्री से मिलने का वायदा किया परन्तु अब वे इससे बचने का प्रयास कर रहे हैं। अतः मुझे तुम्हारे माध्यम से श्रीपाद माधव महाराज से यह प्रार्थना करनी पड़ रही है कि वे इस अति महत्वपूर्ण कार्य के लिये मेरी उस प्रार्थना के संदर्भ में राष्ट्रपति एवं वित्तमंत्री से तत्काल मिलें क्योंकि इसकी प्राप्ति रसीद वांशिंग्टन में भारतीय दूतावास द्वारा दे दी गई है।
>
> तुमने अपने पत्र में लिखा है कि तुम श्रीपाद महाराज से सहयोग के विषय में मेरे पास यहां आने के बाद बात करोगे अन्यथा उनके द्वारा तुम्हारी इस देश की यात्रा रद्द की जा सकती है। मैं इस प्रस्ताव का अर्थ नहीं समझ पाया। क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारे मेरे पास आने से पहले मेरे साथ सहयोग सम्भव नहीं है? यह विचारधाारा क्यों? क्या यह मेरा व्यक्तिगत कार्य है? श्रील प्रभुपाद श्रील रूप-रघुनाथ के संदेश के प्रचार केन्द्रों के रूप में विदेशों में कुछ मंदिर बनाना चाहते थे और मैं विश्व के इस भाग में ऐसा करने का प्रयास कर रहा हूँ। धन तैयार है और अवसर सामने है। यदि वित्तमंत्री से मिलने से इस कार्य को आसान बनाया जा सकता है तो हम कुछ समय तक प्रतीक्षा क्यों करें? क्या इसीलिए कि तुम अपने गुरु महाराज से किसी सहयोग की बात नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हें डर है कि ऐसे में तुम्हारी यहां की यात्रा रद्द हो सकती है। कृपया इस प्रकार न सोचें। प्रत्येक कार्य को श्रील प्रभुपाद का कार्य समझें और इस भावना से सहयोग करने का प्रयास करें। गौड़ीय मठ संस्थान असफल हो गया है।

उपरोक्त अन्तिम दो वाक्य आज इस्कॉन में हमारे लिए अति प्रासंगिक

हैं। वे हमें सूझबूझ प्रदान करते हैं। पहले वाक्य में श्रील प्रभुपाद आध्यात्मिक सफलता हेतु दो अनिवार्य निर्देश देते हैं: प्रत्येक कार्य को 'श्रील प्रभुपाद का कार्य' समझो (मेरा या तुम्हारा नहीं) इस मनोवृत्ति से अनुप्राणित होकर आपस में सहयोग करें। प्रभुपाद का अगला वाक्य बड़ी रूखाई से अभी अभी दिए गए निर्देश का पालन न करने का परिणाम बताता है: निश्चित असफलता।

इस प्रकार 1966 में श्रील प्रभुपाद को एक अनचाही अनुभूति हुई: वे आध्यात्मिक विकार जिन्होंने गौड़ीय मठ को असफल किया था तीन दशक बाद भी उतने ही शक्तिशाली थे।

दानकर्ताओं, सरकार एवं अपने गुरुभ्राताओं से सहयोग की सारी आशाएँ धराशायी होने के पश्चात उन्हें शून्य से ही आरम्भ करना था – केवल अपने बल बूते पर अकेले। हतोत्साहित हुए बिना उन्होंने मंगल निलोय को लिखा, "अन्य किसी से सहायता की कोई आवश्यकता नहीं।"[38]

यह, तब, प्रसंग का मुख्य व महत्वपूर्ण भाग था जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का जन्म हुआ था। अन्य तत्व है, आध्यात्मिक परिपूर्णता, जो युवा अमरीकी व्यक्तियों की संख्या में क्रमश: वृद्धि होने के कारण प्रभुपाद को प्राप्त हो रही थी। इन युवा अमरीकी व्यक्तियों ने भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं पर गंभीर, दृढ़निश्चियी व उत्सुक होकर ध्यान दिया।

प्रभुपाद क्या करते? जैसे ही वे न्यूयॉर्क पहुँचे, उन्होंने नवम्बर सन् 1965 में, सहयोग माँगने हेतू तीर्थ महाराज को अपना प्रथम निवेदन लिख भेजा। प्रभुपाद ने अपने गुरु भाइयों की संख्या के अंतर्गत ही कार्य करने का निश्चय किया था:

> अत: यहाँ हमारे बीच सहयोगिता का अवसर है और मुझे यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आप यह सहयोग देने के लिए तैयार हैं। मैं यहाँ, स्थिति का खोजपरक अध्ययन करने आया था और मुझे स्थिति अत्युत्तम व अनुकूल अनुभव हुई। यदि आपको भी

[38] वेदाबेस: 16 जुलाई, सन् 1966 को मंगल निलॉय को लिखा गया पत्र। यह तिथि प्रभुपाद द्वारा इस्कॉन की स्थापना करने के तीन दिन पश्चात् की है।

> इसमें सहयोग देना स्वीकार्य है तो श्रील प्रभुपाद की इच्छानुसार यह अति उत्तम होगा . . . यदि आप सहमत हैं तो यह जान लें कि मैं श्री मायापुर चैतन्य मठ का एक कार्यकर्ता हूँ।

पत्र प्राप्तकर्ता तथा अन्त अनेक लोगों द्वारा स्वयं को असहयोगी सिद्ध कर देने के उपरान्त, तब श्रील प्रभुपाद ने अपनी स्वयं की संस्था स्थापित की।

ऐसा करने के लिए प्रभुपाद को अपेक्षित रीति से अपराधी ठहराया गया। कलकत्ता में गौड़ीय मिशन के सचि को पत्र लिखने के लगभग ढाई वर्षों के पश्चात, श्रील प्रभुपाद, नगाड़े की ताल के सदृश, सहयोग शब्द को बारम्बार दोहराते हुए, सहयोग की विषय-वस्तु को पुनः उठाते हैं।[39] (वी बीः 23 मई सन् 1969 को गौड़ीय मिशन के सचि को लिखा गया पत्र। ''गौड़ीय मिशनः चैतन्य चरितामृत आदि-लीली 12.8 के अपने तात्पर्य में प्रभुपाद, अगला आचार्य बनने हेतू प्रतिद्वंदी दावेदारों के कारण, गौड़ीय मठ संस्था का ''दो गुटों'' में विघटन हो जाने के विषय में उल्लेख करते हैं जिसके फलस्वरूप न्यायालय में मुकदमा लड़ने की प्रक्रिया भी घटित हुई। कलकत्ता बाग-बज़ार मन्दिर के मुख्यालय में स्थित गुट का नाम ''गौड़ीय मिशन'' पड़ा जबकि मायापुर में तीर्थ महाराज की अधयक्षता में चल रहे श्री चैतन्य मठ के मुख्यालय में स्थित गुट को ''गौड़ीय मठ'' कहा जाता था। अभी भी वहाँ मुख्य वेदी पर लगे एक चिन्ह द्वारा यह सार्वजनिक रूप से घोषित होता हैः श्री चैतन्य मठ श्री मन्दिर, समस्त गौड़ीय मठों का मूल मठ है।) (38 वी बी : 16 जुलाई, सन् 1966 को मंगलमिलॉय को लिखा गया पत्र। यह तिथि प्रभुपाद द्वारा इस्कॉन की स्थापना करने के तीन दिन पश्चात् की है।) वे इसकी अनुपस्थिति का

---

[39] वेदाबेसः 23 मई सन् 1969 को गौड़ीय मिशन के सचिव को लिखा गया पत्र। ''गौड़ीय मिशनः चैतन्य चरितामृत आदि-लीला 12.8 के अपने तात्पर्य में प्रभुपाद, अगला आचार्य बनने हेतु प्रतिद्वंदी दावेदारों के कारण, गौड़ीय मठ संस्था का ''दो गुटों'' में विघटन हो जाने के विषय में उल्लेख करते हैं जिसके फलस्वरूप न्यायालय में मुकदमा लड़ने की प्रक्रिया भी घटित हुई। कलकत्ता बाग-बज़ार मन्दिर के मुख्यालय में स्थित गुट का नाम ''गौड़ीय मिशन'' पड़ा जबकि मायापुर में तीर्थ महाराज की अधयक्षता में चल रहे श्री चैतन्य मठ के मुख्यालय में स्थित गुट को ''गौड़ीय मठ'' कहा जाता था। अभी भी वहाँ मुख्य वेदी पर लगे एक चिन्ह द्वारा यह सार्वजनिक रूप से घोषित होता हैः श्री चैतन्य मठ श्री मन्दिर, समस्त गौड़ीय मठों का मूल मठ है।)

उद्धरण देते हैं, केवल अपने गुरु भाइयों को उनकी गलती पर डाँटने फटकारने या उनकी आलोचना करने के लिए ही नहीं, अपितु इस्कॉन संस्था की स्वयं द्वारा स्थापना करने के कार्य को चतुराई से उचित व न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए भी:

...श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धाँत सरस्वती गोस्वामी महाराज के ध्येय का प्रसार करने के मेरे कार्यकलापों के मामले में, मैं गौड़ीय मिशन के साथ सहयोग करने के लिए हर तरह से तत्पर हूँ किन्तु मैं यह नहीं जानता कि आप, किन परिस्थितियों में मुझे सहयोग देना चाहते हैं। आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए मैं कैसी भी परिस्थित स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। अत: मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा यदि मैं आपसे यह जान सकूँ कि किन परिस्थितियों में यह सहयोग संभव है, किन्त फिर भी मैं हर प्रकार से तैयार हूँ और रूचि सहित मुझे आपके उत्तर की प्रतीक्षा रहेगा।

जहाँ तक मेरे द्वारा, कृष्णभावनामृत संघ के नाम से विख्यात एक अलग संस्था को प्रारम्भ करने का सवाल है, तो ऐसा करना अवश्यभावी था क्योंकि हमारे गुरुभाइयों में से कोई भी एक दूसरे के साथ सहयोग नहीं कर रहा है। हममें से प्रत्येक अपनी स्वयं की संस्था चला रहा है, यहाँ तक कि गौड़ीय मिशन तथा गौड़ीय मठ के बीच में भी मतभेद है।

अत: यदि अब हम सका एक साथ संयुक्त होना संभव है तो मैं इस सुअवसर का स्वागत करने वाला प्रथम व्यक्ति होऊँगाा। दूसरों के अतिरिक्त, यदि गौड़ीय मिशन मेरे साथ सहयोग करने के लिए तत्पर है तो मैं किसी भी परिस्थिति में इस सहयोग को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। इसलिए कृपया सहयोग करने की अपनी शर्तें मुझे बतला दीजियेगा। इस पर विशेष ध्यानपूर्वक व सावधानी से विचार करने में मुझे अत्याधिक प्रसन्नता होगी।

अपनी प्रतिक्रिया लिखने के तीन दिनों के उपरान्त श्रील प्रभुपाद ने एक पत्र के द्वारा, अपने शिष्य ब्रह्मानन्द दास के समक्ष अपने मन की बात सार्व. जनिक रूप से प्रकट की:

डा. श्यामसुन्दर ब्रह्मचारी के गौड़ीय मिशन के पत्र के संदर्भ में, मैंने उनसे,

उनके द्वारा उल्लिखत सहयोग की शर्तों के विषय में पूछते हुए, उनके पत्र का उत्तर दिया है। चलो हम उनकी शर्तों को देखें यद्यपि यह एक निराशाजनक व्यापार हे। फिर भी जैसा कि आप जानते हैं कि मैं किसी भी मामले में, कभी भी आशाहीन नहीं होता। अतएव मैं, यह देखने के लिए कि हम कैसे सहयोग कर सकते हैं, उनके साथ समझौता वार्ता कर रहा हूँ।

इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि श्रील प्रभुपाद गौड़ीय मठ के सदस्यों के साथ सहकारिता प्रयासों के लिए, अपनी आखिरी साँस तक, निरन्त प्रयत्न करते रहे।[40] (पृथ्वी पर अपने आखिरी दो महीनों में, श्रील प्रभुपाद ने, गौरमंडल भूमि का जीर्णोद्धार व विकास करने के लिए, सहकारिता पर आध ारित प्रयास में – भक्तिसिद्धाँत सरस्वती ठाकुर के अनुयायीगण – सारस्वत परिवार को संयुक्त करने के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व मुख्य उद्देश्य के साथ, भक्तिवेदान्त स्वामी चैरिटी ट्रस्ट की स्थापना करने में, समय तथा शक्ति लगाई। तमाल कृष्ण गोस्वामी ने रिकॉर्ड किया कि कैसे श्रील प्रभुपाद ने उस उद्देश्य को नियमबद्ध किया तथा एक ठोस उदाहरण उपलब्ध कराया। प्रभुपाद ने कहा, ''अब और अधिाक असहयोगिता नहीं होनी चाहिए। अब प्रत्येक व्यक्ति को भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का प्रसार करने के लिए सहयोग देना है। जैसे श्रीधार महाराज को अपने नाथ मन्दिर का कार्य समाप्त करने में समस्या हो रही है, इसलिए उसी प्रकार से सहयोग दें। (टी के जी 293)।

उसकी दृढ़ता व अटलता, उनके आध्यात्मिक गुरु के आदेश के प्रति उनकी वचनबद्धता का प्रमाण है। एक सूक्ति द्वारा बताई गई यह उनकी

---

[40] पृथ्वी पर अपने आखिरी दो महीनों में, श्रील प्रभुपाद ने, गौरमंडल भूमि का जीर्णोद्धार व विकास करने के लिए, सहकारिता पर आधारित प्रयास में – भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के अनुयायीगण – सारस्वत परिवार को संयुक्त करने के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व मुख्य उद्देश्य के साथ, भक्तिवेदान्त स्वामी चैरिटी ट्रस्ट की स्थापना करने में, समय तथा शक्ति लगाई। तमाल कृष्ण गोस्वामी ने रिकॉर्ड किया कि कैसे श्रील प्रभुपाद ने उस उद्देश्य को नियमबद्ध किया तथा एक ठोस उदाहरण उपलब्ध कराया। प्रभुपाद ने कहा, ''अब और अधिक असहयोगिता नहीं होनी चाहिए। अब प्रत्येक व्यक्ति को भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का प्रसार करने के लिए सहयोग देना है। जैसे श्रीधर महाराज को अपने नाथ मन्दिर का कार्य समाप्त करने में समस्या हो रही है, इसलिए उसी प्रकार से सहयोग दें। (टी के जी डायरी 293)।

मनोवृत्ति है: ''यह एक निराशाजनक व्यापार (कार्य) है किन्तु मैं कभी भी आशाहीन नहीं होता।''

इन पत्रों में सहयोगिता के विचार का श्रील प्रभुपाद द्वारा सतत आवाहन करना, सार्वजनिक रूप से यह प्रकट करता है कि सहयोग शब्द उनके लिए अति विशेष महत्व रखता है। इसे पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें थोड़ा समय लगाना चाहिए। अंग्रेजी शब्द, एक लेटिन मूल अर्थ ''एक साथ मिलकर कार्य करना'', से व्युत्पन्न हुआ है परन्तु प्रभुपाद की शिक्षाओं में, विशिष्ट अर्थ वाला यह शब्द, अगाधा आध्यात्मिक आयातीत सेवा रूपी वस्तुओं से लद जाता है। सीटल 1968 के एक व्याख्यान में, श्रील प्रभुपाद ने विशिष्ट सादगी के साथ इस आयातीत सेवा-वस्तु के विषय में बतलाया है: ''जब आप भगवान के साथ सहयोग में कुछ कार्य करते हैं तब वह भक्ति कहलाती है।'' प्रभुपाद बलपूर्वक कहते हैं कि कृष्ण के साथ यह सहयोग करना अनिवार्य रूप से स्वैच्छिक है:

> हम व्यक्ति है तथा कृष्ण भी एक व्यक्ति हैं। कृष्ण के साथ हमारा सम्बन्ध एक स्वैच्छिक समझौते के रूप में सदैव खुला रहात है। वह स्वैच्छिक मनोवृत्ति - ''हाँ, कृष्ण, मैं खुशी-खुशी सहयोग दूँगा, आप जैसा कहेंगे, मैं करूँगा'' - कहना मानने के लिए तत्पर रहने की यह इच्छा होना तभी संभव है यदि वहाँ प्रेम है। जबरदस्ती बाध्य करने से मैं सहमत नहीं होऊँगा किन्त यदि आपस में प्रेम होगा तो मैं प्रसन्न होकर इसे करूँगा। यही भक्ति है। यही कृष्णभावनामृत है।[41]

सहयोगिता समस्त स्वस्थ सामाजिक संबंधाों का अत्यन्त महत्वपूर्ण जीवन्त सिद्धाँत है और यह दिव्यता में अपना उच्चतम व्यावहारिक उपयोग प्राप्त कर लेता है। भगवान परम रूप से व्यक्तिगत हैं। इसलिए वे परम रूप से सामाजिक हैं क्योंकि मनुष्यता केवल अन्त व्यक्तियों के साथ बनाये गये संबंधाों में ही प्रकट होती है। इसी कारणवश, जैसा प्रभुपाद ने कई बार कहा, ''कृष्ण कभी

[41] बैक टू गॉडहैड 54:17 (1973) में उद्धृत, एक अनाम गुरुकुल शिक्षक को लिखा गया पत्र

भी अकेले नहीं है।'' एक अवसर पर, उन्होंने उल्लेख किया, ''जब हम कृष्ण के विषय में बोलते हैं तो कृष्ण का अर्थ है, अपने भक्तों सहित कृष्ण'' (वी बी : व्याख्यान, लॉस ऐंजिलिस, 10 जनवरी, 1969)। भगवान के भक्त तो उनकी स्वयं की पहचान को संपूर्ण बनाने के लिए उनके आवश्यक अंश बन जाते हैं। कृष्ण के स्वयं के नाम अपने साथ अपने घनिष्ट भक्तों के नाम सम्मिलित करके जैसे यशोदानन्दन, रामानुज, राधाारमण इत्यादि, प्रायः इस सत्य को सुस्पष्ट करते हैं। अतः श्रेष्ठ रूप से परम (भगवान), एक ही समय पर, परम रूप से सम्बन्धी भी है – समस्त विभिन्न प्रकार के निर्दिष्ट कोटि के भक्तों के साथ संबंधों में प्रविष्ट होकर अर्थात् उनके साथ सम्बन्धा स्थापित करके। ?लस्वरूप वे समस्त विविधिताएँ, और अधिाक परिपूर्ण व त्रुटिरहित संगठन में अधिाकाधिक एकीकृत हो जाती हैं। इस रीति से एक दिव्य सम्बन्ध ता (रिश्तेदारी), सर्वाधिक शांतिदायक व मधुर प्रभाव उत्पन्न करने वाले सहयोग के समाज के रूप में प्रकट हो जाती है। इन सम्बन्धाों के आचरण के द्वारा भगवान् – तथा उनके पार्षदों के – सौंदर्य, ऐश्वर्य, आनन्द तथा ज्ञान में शाश्वत रूप से वृद्धि होती है।

गौड़ीय वैष्णव के लिए मुक्ति का अर्थ है, इस उच्चतम समाज में सामाजिकता का स्वीकार किया जाना, उदाहरणार्थ, छह गोस्वामियों की संगति में या गोपियों की उस मंडली में जो रति-मंजरी या ललिता-सखी की सेवा करें। नरकवास इसका विपरीत है: अलगाव तथा पृथक्करण। हम आत्म-विमुख, असहयोगी जीव-यहाँ निर्वासित किये हुए, अपने अहंकार भाव रूपी अप्रवेशनीय दीवारों द्वारा एकान्त कारावास में पृथ्क्कृत – उस दिव्य समाज के पूर्णतः एकीकृत सदस्यों के रूप में, सदैव वापस लौट जाने के लिये बुलाये जाते हैं। भक्तियोग ऐसा अभ्यास है जिसके द्वारा हम इससे पुनः जुड़ने के लिए उपयुक्त हो जाते हैं। भक्ति के द्वारा हम उस दिव्य समाज के अन्दर अधिाकाधिक एकीकृत हो जाते हैं, कृष्ण के घनिष्ट तथा उनके पार्षदों के घनिष्ट होकर और उसी समय हम अन्य लोगों को भी अपने साथ लाने की चेष्टा करते हैं। श्रील प्रभुपाद ने सन् 1968 में सैन फ्रांसिंस्कों में कहा, ''यही सर्वोत्तम योग है।''

यदि आप कृष्णभावनामृत के इस आन्दोलन को जारी रखते हैं तो आप श्रेष्ठतम योग अर्थात् उच्चतम प्रकार का योग संपन्न कर रहे हैं। तथाकथित 'योगों' द्वारा पथभ्रष्ट मत होइये। यह योग है, योग का अर्थ है सहयोगिता, परम भगवान् के साथ सहयोग करना।

भक्ति सहयोग का योग है। इस जगत में समस्त आध्यात्मिक संघों में से संकीर्तन आन्दोलन, सर्वाधिक पूर्ण रूप से, हमें उस दिव्य सहयोग की ओर ले जाते हैं। चूंकि संकीर्तन, कलह के इस युग में युगधर्म है, हम अलग हुए व्यष्टि जीवों के रूप में नहीं अपितु सब एकसाथ मिलकर, कृष्ण के राज्य में वापस लौटेंग। ''वहाँ हमारा दूसरा इस्कॉन होगा'', श्रील प्रभुपाद ने लिखा।[42] (वी बी : 14 दिसम्बर सन् 1972 में अहमदाबाद में तुष्ट कृष्ण को लिखा गया पत्र)।

प्रभुपाद द्वारा इस्कॉन की स्थापना करना, गौड़ीय मठ के भीतर सहयोग की अस्फलता के कारण, अवश्यंभावी था। नयी किन्तु अवश्यंभावी संस्था, श्रील प्रभुपाद द्वारा अत्यन्त सतर्कता के साथ, ध्यानपूर्व निर्मित की गई थी। प्रभुपाद ने अपने आध्यात्मिक गुरु द्वारा स्थापित संस्था को – जो तब तक निराशात्मक रूप से ध्वस्त हो चुकी थी – मन्दिर निर्माण विद्या सहित अनुकरणीय मॉडल के रूप में श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया। जुलाई सन् 1966 में इस्कॉन का कानून-सममत संघ के रूप में परिणत होना, श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन की पुर्नस्थापना के पाँच अत्याधिाक महत्वपूर्ण कदमों के क्रम में, केवल पहला चरण सिद्ध हुआ। सन् 1966 की ग्रीष्म ऋतु में, शीर्षक ''अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण ाभावनामृत संघ''-यदि शब्द आडंबरपूर्ण नहीं है – इस महान शीर्षक के ध ारक के दायरे में सत्तर वर्षीय वृद्ध, एक टूटा-फूटा स्टोरफ्रंट (भंडारकक्ष का सामने का हिस्सा) तथा फटे हाल बच्चों के समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। फिर भी बीज बो दिया गया था जो समय के साथ फलीभूत होगा।[43]

[42] वेदाबेसः तुष्ट कृष्ण को पत्र, अहमदाबाद, 14 दिसम्बर 1972

[43] वह बीज स्वयं श्रील प्रभुपाद हैं जो श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के गौड़ीय मठ से ही प्रकट हुए हैं। यद्यपि मूल पौधा नष्ट हो गया किन्तु इसके बीच ने जलक्षेत्र के पार जन्म लिया जहाँ उसने जड़ पकड़ीं, फला-फूला तथा फलीभूत हुआ अर्थात् सशक्त होकर स्फलता की ओर अग्रसर हुआ। प्रभुपाद का वर्णन ''बीज बोने वाले व्यक्ति'' के रूप में किया जाता है, क्योंकि नवजात इस्कॉन भी एक बीज ही है। मन्दिर-निर्माण विद्या के इस

इस विशेष प्रयोजन के लिए आवश्यक समस्त तत्वों को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने में चार वर्ष और लगे जिससे कि गौड़ीय मठ संस्था की सिद्धि व परिपूण र्ता प्राप्त करने के लिए इस्कॉन को उपयुक्त बनाया जा सके।[44]

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ - यह एक नए संघ के लिए एकदम नया नाम है, एक ऐसा नाम जो संपूर्ण रूप से, साफ-सुथरे आधाक्षर शब्द (किसी शब्द समूह के शब्दों के पहले अक्षरों से बना छोटा शब्द) द्वारा अलंकृत है। यद्यपि नाम नया है किन्तु यह दो अन्यन्त प्राचीन नामों की याद दिलाता है और वे नाम इस बात को स्पष्ट करते हैं कि संघ, यद्यपि, एकदम नया है फिर भी यह अपनी प्राचीन व आधुनिक संस्कृति को लंबे समय तक कायम रखते हुए, उससे गहराई से जुड़ा है।

श्रील प्रभुपाद, संस्कृत यौगिक शब्द कृष्णभावनामृत के अनुवाद के रूप में, अपने द्वारा बनाये गये अग्रेजी शब्दों के नये शब्द ''Krishna Consciousness'' का स्वयं वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं: ''हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसीलिये कृष्णभावनामृत संघ कहलाता है - यह ऐसे व्यक्तियों का संगठन है जो केवल कृष्ण के विचारों में खोये रहते हैं।'' (श्रीमद् भागवतम 9.9.45, तात्पर्य)। क्या पाठक को इस तथ्य पर चकित होना चाहिए कि कृष्ण ाभावनामृत संघ में ''अन्तर्राष्ट्रीय'' कहाँ है, प्रभुपाद वस्तुतः इस बात से अस. हमत हैं, कि यह कृष्णभावनामृत में अंतर्निहित है:

> वह व्यक्ति जो कृष्णभावनामृत में पूर्णतया निमग्न हे वह कृष्ण से कोई भी भौतिक लाभ नहीं मांगता है बल्कि वह भगवान् से इस आशीर्वाद की प्रार्थना करता है कि वह भगवान् को कीर्ति का प्रचार पूरे विश्व में करने के लिए सक्षम बन सके।

कृष्णभावनामृत केवल उस व्यक्ति को ही आनन्द नहीं प्रदान करती जिसके पास यह होती हैं बल्कि इसे दूसरों को प्रदान करने के लिये एवं इसे

सिद्धांत के अनुसार कि आध्यात्मिक संस्था संस्थापकाचार्य से अभिन्न है, दोनों को ही बीज कहा जा सकता है।

[44] फिर भी इस शर्त पर कि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) अपने में संपूर्ण बना रहे।

समस्त विश्व में विस्तारित करने के लिए उसे बाध्य भी करती है।

इस तथ्य को ध्यान में रखकर हम देख सकते है कि कृष्णभावनामृत उक्ति चैतन्य चरितामृत (चै.च. अन्त्य लीला 16.1) के एक महत्वपूर्ण श्लोक की ओर संकेत करती है।

वन्दे श्री-कृष्ण-चैतन्यं कृष्ण-भावामृतं हि यः।
आस्वाद्यास्वादयन्भक्तान्प्रेम-दीक्षामशिक्षयत् ॥

मैं उन श्रीचैतन्य महाप्रभु को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने स्वयं कृष्ण-प्रेम के अमृत का आस्वादन किया और फिर अपने भक्तों को उपदेश दिया कि उसका आस्वादन किस तरह करें। इस तरह श्रीचैतन्य महाप्रभु उन्हें दिव्य ज्ञान में दीक्षित करने के लिए कृष्ण के प्रेमावेश के विषय में उन्हें उपदेश दिया।

''कृष्ण के लिए परम आनन्द'' के रूप में चैतन्य महाप्रभु का स्वभाव यहाँ पर इस प्रकार है कि वे इसका आस्वादन स्वयं भी कर रहे हैं और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। वे सभी भक्त जिनको इस प्रकार से कृष्ण भावामृत प्राप्त हो रहा है वे स्वयं ही इसके स्वाद का आस्वादन करने वाले एवं प्रदान करने वाले बन जाते हैं। इस प्रकार कृष्णभावनामृत संस्था सहज रूप से ''अन्तर्राष्ट्रीय'' बन जाती है।

इस श्लोक की प्रथम पंक्ति में महाप्रभु के दो नाम - 'कृष्ण चैतन्य एवं कृष्णभावामृत' प्रकट होते हैं। जो कि निकटतम रूप से पर्याय हैं और दोनों ही एक ऐसे व्यक्ति को इंगित करते हैं जिसकी चेतना कृष्ण में ही समाहित है।[45] दोनों ही शब्द समान रूप से ''कृष्णभावनामृत'' के रूप में प्रयुक्त किये

[45] यह उस समय और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी जब चैतन्य-चरितामृत का कृष्णभावनामृत, कृष्णभावनामृत में संमजित हो गया। इन दोनों शब्दो के अर्थो में बहुत थोड़ा ही अंतर है, लेकिन इस पर एक उत्कृष्ट बिन्दु रखने के लिये यह कहा जा सकता है कृष्ण-भाव एक अनुभव को इंगित करता है, कृष्णभावना पूर्णरूप से अपने अस्तित्व को प्रदर्शित करता है। हमें यह ध्यान देना चाहिए कि बाद का शब्द गौड़ीय वैष्णव साहित्य में बहुत ही प्रभावी रूप से दृष्टिगोचर होता है। जैसा कि श्रील प्रभुपाद इंगित करते है। "श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने हमें एक आध्यात्मिक साहित्यिक रचना दी है जिसका शीर्षक है कृष्णभावनामृत जो कि कृष्ण की लीलाओं से परिपूर्ण है। उन्नत भक्त ऐसी पुस्तकों का अध्ययन करके

जा सकते हैं। इस प्रकार भगवान चैतन्य का अंग्रेजी भाषा में व्यक्तिगत नाम ''ज्ञतपींदं ब्वदबपवेदमे (कृष्णभावनामृत) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। और जिसे श्रील प्रभुपाद द्वारा स्थापित संस्था के नाम में कूटबद्ध किया गया है।

''अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ'' की (व्युत्पत्ति) का एक ऐतिहासिक श्रोत ''विश्व-वैष्णव - राजसभा'' है ये शब्द श्रील जीव गोस्वामी के ग्रंथ भागवत-संदर्भ के प्रत्येक पुस्तक के समापन के समय प्रयुक्त औपचारिक घोषणा में दृष्टिगोचर होते हैं। सभा शब्द का अर्थ ''संस्था'' होता है। विश्व शब्द का अर्थ समस्त संसार, जिसके लिये 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द वास्तविक कार्य करेगा।

''वैष्णव राज'' के संदर्भ को शाब्दिक रूप में ''वैष्णवों के राजा'' - भगवान चैतन्य के रूप में ले सकते हैं जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के द्वारा 1919 में वैष्णव तापणी पत्रिका'' में लिखे लेख 'पुनःस्थापना' के द्वारा सूचित किया गया है।[46] श्री चैतन्य देव, जो कि समस्त विश्व के वैष्णवों के राजा अर्थात् विश्व-वैष्णव राज है, स्वयं कृष्ण चंद्र हैं'' उनके समस्त भक्तों का सम्मिलन ''श्री-विश्व-वैष्णव-राज-सभा'' है।

यदि ''कृष्ण-भावनामृत'' शब्द प्रभुपाद की संस्था में श्री कृष्ण चैतन्य के नाम को कूटबद्ध करती है और यदि ''वैष्णव-राज'' श्री कृष्ण चैतन्य को इंगित करता है तो ''अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ'' का शब्दशः उच्चारण विश्व-वैष्णव-राज - सभा को श्रद्धांजलि भी है। वैकल्पिक रूप से, यदि वैष्णव राज-सभा को श्रद्धांजलि भी है। वैकल्पिक रूप से, यदि वैष्णव राज उन नेतृत्व करने वाले भक्तों के संदर्भ में लिखा जाय जिन्होंने कृष्णभावनामृत[47] में उन्नत अवस्था प्राप्त कर ली है तो उनके लिये भी प्रभुपाद के द्वारा संस्था को अंग्रेजी में दिया गया नाम बिल्कुल उपयुक्त है। किसी भी अवस्था में हम यह देखते हैं कि ''अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ'' नाम अपने सांकेतिक

कृष्ण के विचार में निमग्न हो सकते है" (कृष्ण अध्याय-46)

[46] देखें श्री.भ.वै. 1:70-73, लेख का अंग्रेजी अनुवाद

[47] यह विचार विस्तृत है। उदाहरणार्थ "विश्व-वैष्णव-राज सभा उस संस्था को संदर्भित करती है जो उन वैष्णवों का समागम थी जिसमें इस संसार में उपस्थित सभी वैष्णवों के राजा सम्मिलित थे (अर्थात् सबसे मुख्य" - भक्तिकुसम श्रमण - 355)

नेटवर्क एवं सहचर्यो से यह संकेत करता है कि यह संस्था, जैसा कि इसका नामकरण किया गया, बहुत ही विस्तृत रूप से गौड़ीय विरासत से संबंधित एवं पोषित हैं, यहाँ तक कि, यह संस्था विश्व स्तर पर, बहुसंस्कृतीय क्षमताओं के माध्यम से उस परम्परा को नयी स्फूर्ति प्रदान कर रही है।

ऐसा करते समय श्रील प्रभुपाद इस परंपरा में अपने महान पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति ईमानदार रहे। उनके स्वयं के आध्यात्मिक गुरु पूर्व में श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर द्वारा स्थापित विश्व-वैष्णव सभा को पुनः प्रतिष्ठित किया और इसके पूर्व नाम विश्व-वैष्णव राजसभा को पुनः स्थापित किया। उस अवसर पर भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने इस बात पर गौर किया कि शास्वत रूप से स्थापित विश्व-वैष्णव राज सभा, जो कि इस जगत में मह. ाप्रभु एवं उनके पार्षदों के साथ अवतरित हुई, कभी-कभी माया शक्ति के द्व ारा ढ़क ली जाती है, लेकिन साथ ही साथ शक्तिशाली भक्तगण संसार के अंधकार को दूर करने के लिए इसे पुनः प्रज्वलित करने हेतु खड़े हो जाते हैं।

जब गौराब्द 399 तक सार्वभौम वैष्णव समाज का एक प्रभावशाली उज्. जवल नक्षत्र नहीं चमका या तब तक श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और श्रील बलदेव विद्याभूषण के बाद विश्व-वैष्णव राज सभा सामान्यतः लुप्त ही हो गयी थी, जिसने इसे पुनः प्रकाशमान किया। वह प्रभावशाली उज्ज्वल नक्षत्र थे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जो कि सार्वभौम वैष्णवों के राजा के सेवक थे जिन्होंने अपने सुधारों को गति दी एवं सभा को आध्यात्मिक ऊर्जा एवं उपलब्धियों के द्वारा उसका स्फूति प्रदान की 1919 में श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने गौड़ीय परम्परा में एक संगठनात्मक सन्यासी एवं ब्रह्मचारी केन्द्रित आश्रमों का उद्घाटन करके विश्व-वैष्णव -राज सभा को पुनर्जीवित एवं इसका पुनर्निर्माण किया। यह मिशन संपूर्ण भारत में बहुत तीव्रता के साथ प्रसारित हो गया, एवं यूरोप में इसने अपना प्रारम्भिक मार्ग बना लिया था। उसके उपरांत इस आंदोलन का प्रकाश आगामी 30 वर्षो के लिए बुझ गया। उसके उपरांत श्रील् प्रभुपाद 1966 में अपने स्वयं के बल पर अकेले न्यूयॉर्क शहर में अपनी परंपरा को खोजा एवं पुनः स्थापित किया जोकि गौड़ीय मठ के

लिये ''बेकार''[48] हो चुकी थी, इसके लिए श्रील् प्रभुपाद ने अपने उदाहरणीय पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिन्हों का अनुसरण किया और विश्व-वैष्णव-राज-सभा को पुनः प्रकाशमान किया। और अब इसे नये नामकरण ''अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण ाभावनामृत संघ'' के द्वारा पुनः स्थापित एवं पुनर्जीवित किया।

श्रील् प्रभपाद - अनुयायी दीक्षित बन रहे हैं उनकी संख्या में भी वृद्धि हो रही है: बहुत ही तीव्र अनुक्रमण बाद बॉस्टन और उसके आगे भी, कई स्थानों पर मंदिरों का उद्घाटन भी हो रहे हैं। भक्त शिष्यत्व की विद्या में अनुशाशित हो कर प्रगति कर रहे हैं, और ऐसा करके वे उत्तरोत्तर अपने आध्यात्मिक गुरु को समझने में सक्षम बन रहे हैं। जिस प्रकार महा-मंत्र का जप ठीक प्रकार से करने से वह धीरे-धीरे हृदय में प्रकाशित होता है उसी प्रकार जो शिष्य ठीक प्रकार से अनुगमन कर रहा है उसके लिए गुरु की गुह्यता भी खुलती जाती है। इस प्रकार 'स्वामी' और 'स्वामीजी' श्रील् प्रभुपाद बन गये। ऐसा एक बहुत ही महत्वपूर्ण विनमय के दौरान हुआ। जैसा कि गोविन्द दासी स्मरण करती है:

> उन्हें सभी स्वामी जी के रूप में जानते थे। ऐसा मई 1968 तक था। वास्तव में गौरसुन्दर (गोविन्द दासी के पति) ने यह

---

[48] चै.च. आदि 12.8 के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद का यह कथन उनके सभी गुरुभाइयों के समस्त दृष्टिकोण को प्रदर्शित नहीं करता है। एक अन्य, जो कि और भी अधिक प्रसंशनीय पक्ष है, जो कि कभी-कभी प्रदर्शित होता है। यहाँ पर इसके दो उदाहरण है श्रीमद्भागवतम् 4.28.31 के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद लिखते है श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के सभी शिष्य गुरुभाई है, और यद्यपि उनमें वैचारिक मतभेद भी है और यद्यपि वे संयुक्त रूप से कार्य नहीं कर रहे है, तथापि हम सभी अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार कृष्णभावनामृत आंदोलन का प्रचार कर रहे हैं और इसे पूरे विश्व में विस्तारित करने के लिये शिष्य भी बना रहे है और 18 नबम्बर 1967 के एक पत्र में प्रभुपाद अपने शिष्य ब्रह्मानन्द को व्याख्यायित करते है। हमारे गुरु भाइयों के मध्य गलतफहमी है लेकिन हममें से कोई भी कृष्ण की सेवा से दूर नहीं है। मेरे गुरु महाराज ने इस मिशन को साथ मिलकर क्रियान्यवित करने का आदेश दिया था। दुर्भाग्य वश हम सभी अलग हो गये। लेकिन हम सभी में से किसी ने भी कृष्णभावनामृत का प्रचार बंद नहीं किया। यहाँ तक कि हमारे गुरुमहाराज के गुरुभाइयों के मध्य में भी गलतफहमी थी परन्तु कोई भी कृष्ण की प्रेममयी सेवा से दिग्भ्रमित नहीं हुआ। विचार यह है कि उद्वेग एवं गलतफहमी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के मध्य रह सकती हें परन्तु कृष्णभावनामृत में हमारी प्रबल श्रद्धा कोई भौतिक विध्वंश की अनुमति नहीं देगी।

निर्णय लिया कि वे मुझे गोविन्दजी संबोधन से पुकारना चाहते थे। अत: उन्होनें प्रभुपाद से पूछा, प्रभुपाद ने उत्तर दिया, ''नहीं, वास्तव में 'जी' तृतीय श्रेणी का सम्बोधन है मैं, जोकि ठीक उनके सामने बैठी हुई थी, चहकते हुए बोली, ''अच्छा यदि यह तृतीय श्रेणी का संबोधन है, फिर हम आपको जी क्यों बुलाते हैं। यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है''। बिल्कुल नहीं यह बहुत महत्वपूर्ण है। यदि यह तृतीय श्रेणी का संबोधन है, तो हम आपको इस प्रकार संबोधित नहीं करना चाहते। हम आपको स्र्वोत्तम प्रथम श्रेणी से संबोधित करना चाहते हैं। इसलिये आप हमें बताइये कि आपको संबोधित करने के लिए सर्वोत्तम नाम क्या होगा? और वे बहुत ही विनम्र और अनिच्छुक थे, लेकिन मैने उन पर दबाव डाला 'हमें इसे परिवर्तित करना चाहिए। तब उन्होंने कहा, आप मुझे गुरुदेव या गुरु महाराज या श्रील् प्रभुपाद पुकार सकते हो। अत: मैंने कहा, ''यह तो तीन है। हम एक चाहते हैं'' मैंने कहा, ''अच्छा, इनमें से सबसे अच्छा कौन सा है?'' और उन्होंने उत्तर दिया, ''श्रील् प्रभुपाद अच्छा है और सर्वोत्तम है''। तब मैंने कहा, आज से आप श्रील्-प्रभुपाद पुकारे जायेंगे''। और मैंने सभी भक्तों को बताया। कुछ भक्तों ने इसे पसन्द नहीं किया क्योंकि यह जिह्वा मरोड़ने वाला या, 'श्रील्-प्रभुपाद' और स्वामीजी आसानी से प्रवाहित होने वाला है। लेकिन धीरे-धीरे उसी समय से हमने उन्हें श्रील् प्रभुपाद पुकारना आरम्भ कर दिया।[49]

परिवर्तन का यह प्रकार बहुत ही सामान्य एवं अनौपचारिक था, लेकिन परिवर्तन का क्षण अति महत्वपूर्ण। 'गुरू देव' या 'गुरू महाराज' के होने पर ऐसा कभी नहीं होता क्यांकि ये दोनों ही बहुत ही व्यापक एवं अतिप्रचलित है। परन्तु 'प्रभुपाद' असाधारण है।

---

[49] गोविन्द दासी डी.वी.डी. 1: "नवम्बर 1965- गीष्म ऋतु 1970" श्रील प्रभुपाद का अनुगमन: एक अनुक्रमणीय श्रृंखला (इस्कॉन सिनेमा, 2006) भक्तिवेदांत वेदाबेस 2011.1 प्रतिलेखन द्वारा।

यह शब्द चैतन्य चरितामृत मध्यलीला (10.23) में दृष्टिगोचर होता है, जिसमें काशी मिश्र को उद्धृत करते हुए बताया गया है, कि वे भगवान चैतन्य महाप्रभु को ''प्रभुपाद'' से संदर्भित करते हैं। श्रील प्रभुपाद टिप्पणी करते हैं।

> इस श्लोक में प्रभुपाद शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण जोकि चैतन्य महाप्रभु को संदर्भित करता है। श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज टिप्पणी करते हैं। "श्री चैतन्य महाप्रभु जो कि स्वयं परम भगवान श्री कृष्ण हैं, और जिनके सेवक उन्हें प्रभुपाद से संबोधित करते हैं''। इसका तात्पर्य है, बहुत से प्रभु उनके चरण कमल की शरण ग्रहण करते हैं। शुद्ध वैष्णव को प्रभु से संबोधित किया जाता है और ऐसे संबोधन का शिष्टाचार प्रायः वैष्णवों के मध्य देखा जाता है। जब अनेक प्रभु एक अन्यप्रभु के चरणकमलों के आश्रय में रहते है, तब प्रभुपाद का सम्बोधन दिया जाता है। श्रीनित्यानंद प्रभु एवं श्री अद्वैत भी प्रभुपाद कहकर सम्बोधित किये जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु एवं श्रीनित्यानंद प्रभु सभी विष्णु तत्त्व हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु। अतः सभी जीव उनके चरण कमलों के नीचे हैं। भगवान् विष्णु सभी के शाश्वत स्वामी हैं तथा भगवान् विष्णु के प्रतिनिधि भगवान् के गुह्यतम सेवक हैं। ऐसा व्यक्ति कनिष्ठ वैष्णवों के लिए आध्यात्मिक बनता है, अतः आध्यात्मिक गुरु श्रीचैतन्य अथवा स्वयं भगवान् विष्णु के समान आदरणीय हैं। इस कारण आध्यात्मिक गुरु को ॐ विष्णुपाद अथवा प्रभुपाद सम्बोधित किया जाता है।

हमारी परम्परा में "प्रभुपाद" उन दिग्गज (प्रभावशाली) व्यक्ति को आदर प्रदान करने के लिए प्रयुक्त होता है, जिनमें गोस्वामी तथा सदियों प्रश्चात श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर हैं।[50] अतः यह उपाधि इस्कॉन के संस्थापकाचार्य

[50] छह गोस्वामियों का उल्लेख करते हुए, स्वयं श्रील प्रभुपाद "प्रभुपाद" को स्वयं द्वारा प्रयोग को श्रीरूप एवं श्रीजीव तक सीमित रखते हैं। पूर्ववर्ती आचार्यों ने इस सम्मान को अन्य सदस्यों के प्रति भी प्रयुक्त किया है। उदाहरणतः 16 अक्टूबर 1932 के एक प्रवचन में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर रघुनाथ दास गोस्वामी को "दास गोस्वामी

को अत्यन्त दुर्लभ संग में स्थित करता है। अधिक निकट, गुरु एवं शिष्य के बीच "श्रील प्रभुपाद" की उपाधि का आदान-प्रदान दोनों व्यक्तियों तथा उनके उपलब्धियों के बीच गम्भीर एवं अनोखे आकर्षण को सूचित करता है।

गोविन्द दासी के साथ वार्तालाप के लगभग एक वर्ष पश्चात् भगवद्दर्शन क्रमांक 23 (18 अप्रैल, 1969) ने इस उपाधि की घोषणा करने हेतू "प्रभुपाद" शीर्षक के अन्तर्गत एक पूर्ण पृष्ठ का लेख समर्पित किया[51] क्रमांक 25 (सितम्बर, 1969) में "प्रभुपाद" केवल एक बार प्रकट हुआ, परन्तु तत्पश्चात् वह शीघ्र ही सामान्य नियम बन गया। तथा 27 वें अंक में (बिना तिथी के) भगवद्दर्शन के पृष्ठों में "स्वामीजी" अंतिम बार प्रकट हुआ था।[52]

प्रभुपाद" उल्लेखित करते हैं। (वेदाबेस अमृतवाणी, परिशिष्ट) तथा चैतन्यभागवत आदि 1.25 की अपनी टीका में वे विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर को उद्धृत करते हैं, जो सनातन गोस्वामी को "हमारे प्रभुपाद श्रीसनातन गोस्वामी" कहते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिये, कि यह उत्कृष्ट उपाधि कुछ अपसम्प्रदायों में तुच्छ प्रयोग में गिर गयी है। चैतन्य चरितामृत मध्य 10.23 के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद इसे उल्लेखित करते हुए लिखते है: "प्राकृत सहजिया वैष्णव कहलाने के भी योग्य नहीं" वे विचार रखते हैं कि केवल जाति गोस्वामियों को प्रभुपाद बुलाया जाना चाहिये। ऐसे अज्ञानी सहजिया एक ऐसे प्रामाणिक आध्यामिक गुरु के प्रति इर्ष्यालु होते हैं। जिन्हें प्रभुपाद सम्बोधित किया जाता है, तथा वे एक प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु को एक साधारण मनुष्य अथवा किसी जाति का सदस्य समझकर अपराध करते हैं।" जयपताका स्वामी भी एक वार्तालाप का स्मरण करते हैं श्रील प्रभुपाद के साथ, जो प्रभुपाद के कुछ गुरुभाइयों से मिलने के तुरन्त पश्चात् हुआ था। प्रभुपाद ने हमें वापस भीतर बुलाया। उन्होंने कहा वे कुपित हैं कि मैं प्रभुपाद का नाम प्रयुक्त कर रहा हूँ, अत: मैंने कहा मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे शिष्य मुझे ऐसा बुलाते है। तत्पश्चात् प्रभुपाद ने कहा कि वास्तव में प्रभुपाद का नाम जाति गोस्वामियों एवं नवद्वीप के अन्य निवासियों में बहुत सामान्य था। अत: वह एक पृथककृत नाम नहीं था। वे उसे रखना पसन्द करते थे क्योंकि उन्हें लगा केवल अपसम्प्रदायों का ही प्रभुपाद के नाम पर एकाधि कार क्यों हो? (व्यक्तिगत संदेश)।

[51] वह लेख नाम के अर्थ एवं तात्पर्य को समझाता है तथा यह घोषित करता है कि कृष्ण ाकृपाश्रीमूर्ति के हम अमेरिकी एवं यूरोपीय सेवक... कृष्ण कृपा हमारे आध्यात्मिक गुरु को प्रभुपाद सम्बोधित करना चाहते हैं, तथा उन्होंने दयापूर्वक "हाँ", कहा है। (भगवद्दर्शन 25.24)।

[52] भगवद्दर्शन क्रमांक (24 अक्टूबर 1969) में हयग्रीव द्वारा "हरे कृष्ण विस्फोट" नामक लेख में सब स्थानों में प्रभुपाद है। भगवद्दर्शन क्रमांक 28 में मुख्य महत्वपूर्ण लेख जो महात्मा हमारे बीच चलते हैं (प्रष्ठ 7-11), मुख्यत: प्रभुपाद के विशाल चित्रों

हम क्रमिक श्रृखला में महत्वपूर्ण कदम अथवा अवस्थाओं को वर्णित कर रहे है, कि जिनके द्वारा श्रील प्रभुपाद के निरिक्षण में इस्कॉन ने रूप धारण किया।

1) "अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ" के नाम से एक संस्था का संस्थापन।

2) उस संस्थापक का "प्रभुपाद" की उपाधि से पहचान

इस्कॉन के आकृति में तीन अन्य मूल तत्त्व प्रकट होना बाकी है। वे सभी 1971 के प्रारम्भ तक अंतत: सुव्यवस्थित हो गये थे। वे है:

3) आगे प्रभुपाद की "संस्थापकाचार्य" की उपाधि से पहचान

4) गवर्निंग बॉंडी कमिशन की स्थापना

5) श्रीधाम मायापूर में इस्कॉन के विश्व मुख्यालय के लिए भूमि प्राप्त करना, तथा वहाँ वैदिक ताराघर के मन्दिर के नींव की उत्सव के माध्यम से स्थापना।

इसके साथ इस्कॉन के सभी मूल तत्त्व उसके संस्थापकाचार्य के द्वारा सुव्यवस्थित कर दिये जायेंगे।[53]

संस्थापकाचार्य: श्रील प्रभुपाद के इस अत्यंत परिणामी उपाधि ने अपनी उचित प्रमुखता प्राप्त करने के लिये समय लिया। जब 1970 में, "आचार्य" की उपाधि अपने में ही अपर्याप्त एवं अपराधजनक सिद्ध हो गयी। तथापि

से है (एक पूर्ण पृष्ठ, दो अन्य पृष्ठ का एक एवं तीन चौथाई भाग) साथ के पाठ्य भाग में वे अब भी "स्वामीजी" हैं। परन्तु उस अंक के अन्य लेखों में उन्हें "प्रभुपाद" अथवा "प्रभुपाद ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी" सम्बोधित किया गया है। "बॉस्टन विवाह" के लेख में (जिसमें अनेक चित्र भी है) उनका प्रथम उल्लेख कृष्ण कृपाश्रीमूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद है तथा पश्चात में वे "प्रभुपाद" तथा "कृष्णकृपाश्रीमूर्ति है"।

[53] आश्वस्त होने के लिये, इस्कॉन के अन्य अति महत्वपूर्ण प्रमाणचिन्ह 1971 में अपने स्थान पर व्यवस्थित थे, जिनमें सबसे उल्लेखनीय थे ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, गृहस्थ एवं संन्यास आश्रम, नव वृन्दावन ग्रामीण समुदाय परियोजना, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट जो (जी.बी.सी. के एक दिन पश्चात् स्थापित हुई थी) यह जितने महत्वपूर्ण हैं, यह सार भागों के समान कार्य करते हुए नहीं प्रतीत हुए, जब उन्हें गिरजा निर्माण विद्या के संदर्भ में देखा जाय।

यह स्पष्ट है कि श्रील प्रभुपाद प्रारम्भ से ही स्पष्ट जानते थे कि उन्हें क्या चाहये था।

तथापि, 1966 के इस्कॉन को निगमित करने के तुरन्त पश्चात, श्रील प्रभ‌ुपाद का व्यक्तिगत शीर्षक लेखन सामग्री उनके पद को मात्र "आचार्य स्वामी ए०सी० भक्तिवेदान्त" प्रदर्शित करता है।[54] वैसे ही, "आचार्य स्वामी ए०सी० भक्तिवेदान्त" इस पंक्ति ने सितम्बर 1966[55] में विख्यात "सदैव ऊपर रहें" विज्ञप्ति में सार्वजनिक वितरण प्राप्त किया। जब हम प्रारम्भिक कुछ वर्षों के भगवद्दर्शन[56] का निरीक्षण करते हैं, हम दो अत्यंत आश्चर्यजनक अपवादों के अतिरिक्त कहीं श्रील प्रभुपाद के नाम एवं उनके इस्कॉन के सम्बन्ध के पद को प्रदर्शित करते हुए पक्तियाँ अथवा औपचारिक पत्र नहीं देखते हैं।[57] यह केवल दूसरे (सितम्बर 12, 1966) एवं चतुर्थ (दिसम्बर 15, 1966) अंकों में ही आते हैं तथा श्रील प्रभुपाद का मार्गदर्शक हाथ सूचित करते हुए इतने समान प्रमुखता, प्रारूप एवं शैली के साथ, एवं अन्य स्थानों पर उनकी अनुपस्थिति कुछ रहस्यमय बनाती है।

---

[54] इस लेखन सामग्री की प्रतिलिपि जो हयग्रीव को पत्र लिखने हेतु प्रयुक्त की गई थी, वह 'हरे कृष्ण विस्फोट', में प्राप्त की जा सकती है, जो पृष्ठांक 128–129 के बीच में प्रतिभाग किया हुआ है। "अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ निगमित" के नीचे आचार्य स्वामी ए.सी. भक्तिवेदान्त मोटे एवं बड़े अक्षरों में बाँई सीमा में प्रकट होता है। ठीक उसके नीचे ट्रस्टी शब्द आता है।, जो उसके नीचे पृष्ठ के खण्ड में नौ नामों के ऊपर है। श्रील प्रभुपाद द्वारा सैन फ्राँसिस्कों से लिखे गये एक पत्र के शीर्षक जिसमें सैन फ्रांसिस्को मन्दिर का पता था, उसमें भी उनका नाम उसी ही प्रकार प्रकट हुआ। अन्य पत्रों में वे "ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी, आचार्य" अथवा उनके हस्ताक्षर के नीचे "आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ" (वेदाबेस पत्र व्यवहार 1 फरवरी 1968 को हरे कृष्ण अग्रवाल, 22 अगस्त 1968 को डेविड़ एक्स्ली को) हनुमान प्रसाद पोद्धार को लिखे गये एक लम्बे पत्र में जिसमें वे इस्कॉन के कार्य एवं उपलब्धियाँ वर्णित करते हैं, वे उल्लेखित करते है... "हर बैंक खाते में मेरा नाम आचार्य के रूप में है।"

[55] भगवद्दर्शन क्रमांक 26 (अक्टूबर, 1969) को विज्ञप्ति की प्रतिलिपि हेतु देखें।

[56] इनके स्कैन की गई प्रतिलिपियाँ www.backtogohead.in में उपलब्ध हैं।

[57] हर अंक में छोटा, बक्से में रखे गये भगवद्दर्शन शीर्षक "संस्थापकः ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी" भी रखता है। परन्तु इधर "संस्थापक का उल्लेख भगवद्दर्शन के प्रति है, इस्कॉन के प्रति नहीं।"

आगे के भीतरी जिल्द भगवद्दर्शन कि द्वितीय एवं चतुर्थ अंक में, श्रील प्रभुपाद को लगभग पूर्ण पृष्ठ का श्रील प्रभुपाद का चित्र प्रदर्शित करता है। (दो भिन्न चित्र हैं जिसमें प्रभुपाद को टॉम्कीन्स स्कवेअर उद्यान में बड़े जगली वृक्ष के समक्ष प्रभुपाद को चित्र में हैं, दोनों ईस्ट विल्लेज के एक ही लेख से।) प्रत्येक चित्र के उपरी भाग में शब्द थेः-

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति
स्वामी ए.सी. भक्तिवेदान्त
संस्थापकाचार्य
अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ, निगमित.

इन दोनों प्रारंभिक अंको के पश्चात, "संस्थापकाचार्य" की उपाधि 28 वे अंक (1969 के अंत) तक अप्रकट हो जाती है,[58] जिधर वह 1966 के अंत में किये गये दोनों के लगभग समान बर्ताव प्राप्त किये हुए पुनः प्रकट होती है। 1969 के अंक में श्रील प्रभुपाद का एक चित्र संपूर्ण प्रथम पृष्ठ घेरता है तथा केवल नीचे अनुशीर्षक के लिये स्थान बचता हैः

श्रीश्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी
इस्कॉन के संस्थापकाचार्य तथा पाश्चात्य जगत में
कृष्णभावनामृत के सबसे महान प्रचारक।

परन्तु श्रील प्रभुपाद के पद का इस प्रकार का बर्ताव हम लगभग एक वर्ष पश्चात ही देखते हैं। तब, भगवद्दर्शन क्रमांक 36 (1970 के अंत में) हम श्रील प्रभुपाद के एक नियमित आदर्श प्रस्तुतीकरण का प्रारम्भ देखते हैं, जिसे हम आज देखने के आदी हैं- तथा जिसका नमूना भगवद्दर्शन के प्राथमिक दो अंको में था उनके नाम एवं दिये गये पूर्ण पद के ऊपर एक विशाल चित्र।

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति
ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य

---

[58] भगवद्दर्शन ने 26 वें अंक (अक्टूबर, 1969) से अपने अंकों में तिथि देना समाप्त कर दिया।

यद्यपि संस्थापकाचार्य की उपाधि ने इस प्रकार प्रयोग में सामान्य बनने के लिये समय लिया, यह स्पष्ट है कि वह बहुत पहले से ही श्रील प्रभुपाद के मन में थी। उन प्रारम्भिक तीन अंकों में प्रभुपाद का संस्थापकाचार्य के रूप में विशेष प्रस्तुतीकरण निश्चित ही कम एवं अनियमित हैं। परन्तु तीनों एक समान उदाहरण को इतने निकट से अनुसरण करते हैं- जैसा कि एक संशोधक वर्तिका पत्र द्वारा निर्देशित हो- कि कोई उनके पीछे श्रील प्रभुपाद का मार्गदर्शक हाथ देख सकता है।

1970 की गंभीर समस्या- जो इस टिप्पणी के प्रारंभ में छुई गयी हैं- उसने श्रील प्रभुपाद को अपने आन्दोलन को सशक्त बनाने के लिये शक्तिशाली उपचार कार्यों को उठाने के लिये प्रेरित किया।[59] उनमें इस्कॉन के सम्बन्ध में उनकी उपाधि "संस्थापकाचार्य" के प्रयोग के लिये स्तरो की दृढ़ स्थापना थी। ऐसा करके, प्रभुपाद सभी इस्कॉन के सदस्यों पर उनके पद के समझ को और हमारे द्वारा गहरा बनाने एवं उसे अपने मन में सुचारू रूप से रखने की आवश्यकता को महत्व देना चाहते थे।

इसे इतना महत्वपूर्ण क्या बनाता है? इस्कॉन की आध्यात्मिक शक्ति, इस्कॉन के प्रारम्भ में पूर्णतया श्रील प्रभुपाद के भरोसे थी। उनके निर्देशों का पालन कर, उनके शिष्य-यद्यपि अपरिपक्व एवं अस्थिर थे वे स्वयं उनकी शक्ति से शक्तिप्रदत्त हो गये। अपने प्रभावकारी दूतों के रूप में केवल कनिष्ठ भक्तों के साथ भी, 1971 तक श्रील प्रभुपाद ने संपूर्ण विश्व में कृष्ण ाभावनामृत का प्रचार कर दिया था उत्तरी अमेरिका में बढ़ते हुए मन्दिरो के साथ, इस्कॉन केन्द्र लंदन, पेरिस, हैम्बर्ग एवं टोकियो में स्थापित हो गये थे

---

[59] भारत में कुछ गुरुभाई, जिन्होंने श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने प्रभुपाद के अधिकार एवं पद को भीतर से द्रोही रूप से नीचा दिखाया था, जिसके फलस्वरूप अंतत: उनके कुछ नेताओं की श्रद्धा एवं समर्पण में भी समझौता आ गया था। श्रील प्रभुपाद ऐसे गुरुभाइयों को चैतन्य चरितामृत आदि 10.7 में उल्लेखित करते है। जब हमारे शिष्य उस ही प्रकार अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रभुपाद सम्बोधित करना चाहते थे, कुछ मूर्ख व्यक्ति इर्ष्यालु हो गये। हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रचार कार्य पर विचार न करके, केवल इसलिये कि इन शिष्यों ने अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रभुपाद सम्बोधित किया था, यह इतने इर्ष्यालु हो गये कि इन्होंने अन्य ईष्यालु व्यक्तियों के साथ एक गुट बना लिया। केवल कृष्णभावनामृत आन्दोलन का मूल्य गिराने के लिये।

तथा आन्दोलन प्रबल हो रहा था। श्रील प्रभुपाद इसे कैसे प्राप्त कर पाये थे? अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेश को अपने सर्वोच्य धन के रूप में मूल्य देकर तथा उस आज्ञा के बिना हिचकिचाहट के पालन कर, यद्यपि वे अकेले एवं बिना सहायता के थे। श्रील प्रभुपाद हरे कृष्ण आन्दोलन को ठीक उधर से उठाने में समर्थ बने थे जिधर श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने उसे छोड़ा था, तथा उसे उस ही दृढ़ प्रबल प्रेरणा के साथ चलानेके लिये, जिसने उनके अपने आध्यात्मिक गुरु को शक्ति दी थीं। आश्चर्यजनक रूप से एक "महान संस्था" के संयुक्त बलों ने दो दशकों तक जिस लक्ष्य पर ध्यान लगाया था, वह उस वृतान्त के श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के एक दूत द्वारा अकेले कार्य कर साक्षात्कार किया गया था।

इस प्रकार श्रील प्रभुपाद ने स्वयं के लिये देख लिया था और कार्य में उसे पुष्ट कर दिया था– शिष्यत्व और सेवाभाव की शक्ति से। केवल सेवाभाव के कारण, ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक दिव्य शक्ति–गौर शक्ति के बिना रूकावट के कार्य करना जारी रखा था, एक से दूसरे तक स्थानान्तरित करते हुए। अब प्रभुपाद की चुनौती यह थी कि वही आध्यात्मिक सेवा भाव की कला अपने स्वयं के शिष्यों के मन में बिठानी थी। यदि सफल हो, तब इस्कॉन के जीवित सांस्कृतिक विरासत के रूप में समय के साथ वे उसे आगे प्रदान करेंगे। यदि उनके अनुयायी उनके विरासत को प्राप्त कर उसके योग्य बने, उसका सुधार एवं विकास करते हुए जैसा उन्होंने किया था और 'सहकारी सेवाभाव' को सभी कार्य के केन्द्र में रखकर तब संस्थापकाचार्य के रूप में उनका कार्य पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करेगा।

इस ही समय के दौरान, श्रील प्रभुपाद ने अपने कुछ शिष्यों के आग्रहपर विशेष सम्मान हेतु व्यक्तिगत प्रणाम मंत्र प्रदान किया।[60] सामान्यतः एक योग्य

[60] तमाल कृष्ण गोस्वामीः जब हम प्रभुपाद के समक्ष गये थे, तथा उनसे कहा कि उनके शिष्य होते हुए हम एक विशेष प्रार्थना चाहते हैं जो हम उनके सम्मान में उच्चारित कर सकते थे। उन्होंने एक श्लोक की रचना की थी, जिसमें उन्होंने अपने मिशन का वर्णन किया था। (एस. एस. 187) एक व्यक्तिगत मंत्र, अर्थात एक आध्यात्मिक गुरु का विशेष व्यक्तिगत लक्षण अथवा उपलब्धि के लिये सम्मानित करना। प्रथम प्रणाम मंत्र सामान्य है, अर्थात् किसी भी गुरु के प्रति निर्देशित जिनका नाम उस मंत्र के भीतर डाला गया हो। नये प्रणाम मंत्र की तिथिः अप्रैल 9, 1970 को प्रद्युम्न दास को लिखे गये एक पत्र में श्रील

शिष्य अपने गुरुदेव के सम्मान में ऐसे मंत्र की रचना करने के लिये योग्य होता है। क्योंकि उस समय श्रील प्रभुपाद का कोई शिष्य भाषा अथवा आध्यात्मिक रूप से योग्य नहीं था, श्रील प्रभुपाद के सामने स्वयं ही मंत्र देने की स्थिति खड़ी हुई। इस कारण, प्रभुपाद का उनके द्वारा स्वयं का प्रतिनिधित्व हमें प्राप्त हुआ है। वे स्वयं का किस प्रकार विचार रखते थे, तथा जैसे हम प्रतिदिन उनकी उपस्थिति का आह्वान करते है? तो वे हमें किस प्रकार उनका स्मरण रखना चाहते थे।

नमस्ते सारस्वते देवे गौर वाणी प्रचारिणे।
निर्विशेष शून्यवादी पाश्चात्य देश तारिणे।।

श्रील प्रभुपाद सारस्वते नाम से स्मरण किया जाना चाहते हैं, जो उनके आध्यात्मिक गुरु के सम्बन्ध में उनका नाम है। सारस्वते गोत्रीय है इसका अर्थ है- "पुत्र (अथवा शिष्य) भक्तिसिद्धांत सरस्वती का"[61] जैसा प्रभुपाद समझाते है (चैतन्य चरितामृत 10.84 तात्पर्य)" कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों के रूप में हम सरस्वती गोस्वामी के परिवार अथवा परंपरा में आते हैं, अतः हमें सारस्वत जाना जाता है। अतः आध्यात्मिक गुरु को सारस्वत देव के रूप में प्रणाम अर्पित किये जाते हैं, अथवा सारस्वत परिवार के सदस्य को..." अतः इस प्रणाम मंत्र में उनका स्वयं का नाम मात्र उनके आध्यात्मिक गुरू का नाम है जो व्याकरण के कुछ बदलावों के साथ प्रथम अ को आ बनाकर, तथा शब्द के अंत को परिवर्तित कर उनका स्वयं का नाम बन जाता है। इस प्रकार "सारस्वत" उनके दीर्घ घनिष्ठता की ओर ध्यान निर्देशित करता है तथा यह विचार प्रदान करता है कि पुत्र की उपलब्धियाँ, उनके पिता के नाम पर

प्रभुपाद उसे "नयी प्रार्थना के योग" से उल्लेखित करते हैं तथा संस्कृत के व्याकरण में परिवर्तन प्रस्तावित करते हैं।

[61] संस्कृत व्याकरण में एक गोत्रीय अथवा माता के नाम से आये हुए नाम के निर्माण के लिये एक नियम है। आंतल भाषा में, "जॉनसन" अथवा "एरिक्सन" जैसे सामान्य कुलनाम मूल रूप में गोत्रीय थे (जॉन का पुत्र) स्कॉटलैण्ड में, "मैक" का उपपद एक गोत्रीय के चिह्न हैं, मैक्डोनाल्ड (मूल रूप में) डोनाल्ड का पुत्र होते हुए आयरलैण्ड में फिट्जगेराल्ड गेराल्ड का पुत्र था। रूसी भाषा में "इवानोविच" भी गोत्रीय है। संस्कृत नियम के अनुसार, प्रभुपाद ने स्वयं को "सारस्वत" सरस्वती ठाकुर का पुत्र अथवा सेवक सम्बोधित किया।

जो अर्जित की गई हैं- वे पिता की सम्पत्ति है, उनके संरक्षक एवं निर्देशक। इस संदर्भ में, पुत्र पिता का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रतिनिधित्व का अर्थ है पुनः प्रस्तुतीकरण।

श्रील प्रभुपाद का प्रणाम मंत्र उन्हें ऐसे व्यक्ति के रूप में पहचान दिलाता है जो भगवान् चैतन्य की शिक्षा (गौरवाणी) पाश्चात्य जगत (पाश्चात्य देश) में प्रचारित करते हैं (प्रचारिणे)। उनकी उपलब्धि गौड़ीय मठ का संगठित लक्ष्य था, जिसने 1933 में यूरोप में एक पैर रखने का स्थान प्राप्त किया था, परन्तु आगे कुछ नहीं। यदि वह स्थिति सुरक्षित कि जाती- विशेषकर एक लंदन के मन्दिर के निर्माण द्वारा भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर स्वयं ही पाश्चात्य जगत ले चले गये होते।[62] परिस्थिति के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि उनका उद्देश्य व्यर्थ किया गया हो। तथापि, समय के परिपक्वता के साथ, उनका एक सारस्वत था। जिन्होंने उनकी हार्दिक इच्छा पूर्ण की।

सारस्वत देव यह नाम यह सूचित करता है कि उसका धारक सरस्वती ठाकुर की ही निरंतरता है। दूसरे रूप में। इस रूप में, भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने अपनी हार्दिक इच्छा पूर्ण करने में सफलता प्राप्त की। जब उनके सबसे समर्पित शिष्य ने यह साक्षात्कार किया कि सफलता हाथों में थी,[63] तथा उसका नाम एवं रूप "अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ" था, श्रील प्रभुपाद

[62] जुलाई 12, 1935 का हार्मोनिस्ट (हार्म 31:521-22) यह विवरण देता है महारानी इन्दिरा देवी, कूच बिहार की शासक, ने बाघबाजार कलकत्ता के श्रीगौड़ीय मठ का दा. ैरा किया जहाँ वह श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर से मिली। उस बैठक का पत्रिका विवरण देता है कि महारानी ने सम्पादक भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के पाश्चात्य में प्रचार के विस्तार हेतु यूरोप की प्रस्तावित यात्रा के विषय में अत्यंत उत्सुकता से जिज्ञासा की।

[63] उनके द्वारा इसके साक्षात्कार का ठीक समय हम नहीं जानते। किसी भी स्थिति में, श्रील प्रभुपाद का भविष्य का ज्ञान साधारण बद्ध व्यक्तियों जैसा नहीं था। 1965 के शरद ऋतु के अंत में श्रील प्रभुपाद एक उद्यान के तख्त पर बैठे एवं एक न्यूयार्क नगर के सबवे कण्डक्टर से बात किये, जो स्मरण करते हैं (श्रील प्रभुपाद लीलामृत 2:28) ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्हें ज्ञात था कि उनके पास मन्दिर भक्तों से भरे हुए होंगे। वे बाहर देखते एवं कहते "मैं एक निर्धन व्यक्ति नहीं, मैं धनी हूँ। मन्दिर एवं ग्रन्थ हैं, वे अस्तित्व में हैं, वे हैं, परन्तु समय हमें उनसे अलग कर रहा है।"

ने संस्थापकाचार्य की उपाधि स्वीकार की। श्रील प्रभुपाद का यह आत्मविश्वस्त कार्य यह सूचित करता है कि यह उपाधि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की चरम सफलता को पहचानने के लिये तैयार की गयी थी, जो उनके द्वारा कृष्णभावनामृत एक विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में स्थापना करने में की गई थी तथा श्रील सरस्वती ठाकुर ने उस सफलता को अपने सारस्वत के माध्यम से अर्जित किया था।

श्रील प्रभुपाद का प्रणाम मंत्र दो प्रकार की उपलब्धियों को पहचानता है। परम भगवान के प्रति भक्तिमय सेवा का व्यापक प्रचार, तथा शून्यवाद एवं निर्विशेषवाद की पराजय। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के नीचे गौड़ीय मठ एवं सम्प्रदाय आचार्यों की चरम उपलब्धियाँ भी थीं।

यह उल्लेखनीय है कि श्रील प्रभुपाद अपनी उपलब्धि को पहचान पाये थे, तथा रंचमात्र के गर्व के बिना उसका उचित सम्मान स्वीकार कर पाये थे। यह स्पष्ट है कि एक समय पर श्रील प्रभुपाद ने साक्षात्कार किया था कि सभी प्रतिरोधों के होते हुए भी वे अपने आध्यात्मिक गुरु की आज्ञा का निष्पादन कर पायेंगे। उन्होंने यह साक्षात्कार किया कि उन्हें शक्ति प्रदान की गयी थी। यह आध्यात्मिक मनोविज्ञान स्वाभविक लक्षण है, जो महान भक्तों एवं सन्तो में देखा जा सकता है, कि सशक्तिकरण का अनुभव अनिवार्य रूप से अत्यंत दीनता के अनुभव के साथ आता हैं तथा जितना अधिक शक्तिकरण फल प्रदान करता है उतनी ही अधिक विनम्रता बढ़ती है। महान उपलब्धि एवं अत्यंत विनम्रता का सघन मिश्रण साधारण भौतिकवादी व्यक्तियों के अनुभव से परे है। वे इसकी मनोकल्पना करना भी नहीं प्रारंभ कर सकते।

जब श्रील प्रभुपाद के प्रयत्नों पर प्रत्यक्ष सफलता सेवा देने लगी। उन्होंने अपने निजी प्रयत्न को तुच्छ बता दिया, अन्यों को श्रेय दिया था और वे कृतज्ञता से भर गये।

अनेक स्मरणीय अवसरों पर उन्होंने सार्वजनिक सभा में अपना मन व्यक्त किया। उदाहरणत: अगस्त 22, 1973 को लंदन में श्रीव्यास पूजा मनाने के लिये एकत्रित अपने शिष्यों से बात करते हुए श्रील प्रभुपाद ने कहा–

जो कोई भी हमारे आन्दोलन से जुड़ा हुआ है, वह साधारण जीव नहीं। वास्तव में वह मुक्त आत्मा है। तथा मैं बहुत आशावान हूँ कि जो मेरे शिष्य अब आज भाग ले रहे हैं, यदि मैं मृत भी हो जाऊँ, मेरा आन्दोलन नहीं रुकेगा, मैं बहुत आशावान हूँ... मेरे गुरु महाराज, कृष्णकृपाश्रीमूर्ति भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद, उन्होंने भी पाश्चात्य जगत में चैतन्य पंथ का प्रचार करने के लिये अपने शिष्यों को भेजने का प्रयास किया था। आप जानते हैं कि प्रथम मिलन में ही उन्होंने मुझे प्रचार करने के लिए कहा। अतः उस समय मैं एक नवयुवक था, केवल पच्चीस वर्ष का, तथा मैं गृहस्थ भी था। अतः मुझे तुरन्त जुड़ जाना चाहिये था तथा उनकी इच्छा का निष्पादन करना चाहिये था, परन्तु मेरे दुर्भाग्य के कारण मैं उनकी आज्ञा तुरन्त निष्पादित नहीं कर पाया, परन्तु मेरे हृदय में था, कि इसे करना आवश्यक है। अतः कभी न करने से अच्छा विलम्ब से करना, मैंने उनकी आज्ञा का निष्पादन सत्तर वर्ष की आयु में किया, पच्चीस वर्ष की आयु में नहीं। अतः मैंने वास्तव में इतना अधिक समय व्यर्थ किया, मैं उसे समझ सकता हूँ।... संदेश तब था जब मैं पच्चीस वर्ष का था, परन्तु मैंने सत्तरवर्ष की आयु में प्रारंभ किया। परन्तु मैंने संदेश का विस्मरण नहीं किया। नहीं तो मैं कैसे कर पाता? वह एक तथ्य है। मैं केवल अवसर ढूंढ रहा था, कैसे उसे करें अतः किसी भी प्रकार से, यद्यपि मैंने अत्यधिक विलम्ब से प्रारम्भ किया, सत्तर वर्ष की आयु में, अतः मेरे शिष्यों की सहायता से यह आन्दोलन सफलता प्राप्त कर रहा है तथा पूरे विश्व में फैल रहा है। अतः मुझे आप का धन्यवाद करना है। यह सभी आपके कारण है। यह मेरा श्रेय नहीं, परन्तु यह आपका श्रेय है कि आप मेरे गुरु महाराज की आज्ञा निष्पादित करने में मेरी सहायता कर रहे है।

बाद में उस वर्ष लॉस एन्जलेस में श्रील प्रभुपाद ने अपने आध्यात्मिक गुरु के तिरोभाव दिवस पर समानतर विचार अधिक प्रत्यक्ष भाव के साथ प्रकट

किये (वेदाबेस, प्रवचन, 31 दिसम्बर 1973)।

> अत: इस प्रकार, शनै:-शनै मैं इन गौड़ीय मठ की गतिविधियों से आसक्त हो गया, तथा कृष्ण की कृपा से मेरा व्यापार भी बहुत अच्छा नहीं चल रहा था। (हँसते हैं) हाँ! कृष्ण कहते है- "यस्याहं अनुगृहणामि हरिष्ये तद्धनं शनै:।" यदि कोई कृष्ण का वास्वविक भक्त बनना चाहता है तथा उस समय ही भौतिक आसक्ति बनाये रखता है। तो कृष्ण का कार्य यह है कि वे सब भौतिक वस्तुओं को ले लेते हैं, जिससे कि वह शत प्रतिशत कृष्ण पर निर्भर हो जाता है। तो यह मेरे जीवन में वास्तविक रूप से हुआ। मैं इस आन्दोलन में प्रवेश कर इसे अत्यंत गंभीरता से लेने के लिये बाध्य हो गया था
>
> मैं स्वप्न देख रहा था कि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर मुझे पुकार रहे हैं, "कृपया मेरे साथ बाहर आये।" अत: मैं कभी एक बार भयभीत था अरे! यह क्या है? मुझे पारिवारिक जीवन त्यागना पड़ेगा? भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर मुझे पुकार रहे है? मुझे संन्यास लेना होगा? अरे, मैं भयभीत हो गया था। परन्तु मैंने कई बार देखा मुझे पुकारते हुए। अत: किसी भी प्रकार से मैं अपना पारिवारिक जीवन, अपनी तथाकथित व्यापार का जीवन त्यागने के लिये बाध्य हो गया था। तथा वे मुझे अपनी शिक्षा का प्रचार करने के लिये किसी न किसी प्रकार लाये।
>
> अत: यह एक स्मरणीय दिवस हैं, जो उन्होंने इच्छा की मैं कुछ थोड़ा प्रयत्न कर रहा हूँ तथा आप सब मेरी सहायता कर रहे हैं। अत: मुझे आपका अधिक धन्यवाद करना है। आप मेरे गुरु महाराज के वास्तविक प्रतिनिधि हैं (क्रन्दन करने लगते हैं) क्योंकि आप मेरे गुरु महाराज की आज्ञा निष्पादित करने में मेरी सहायता कर रहे हैं।

जब भारतीय प्रशंसक श्रील प्रभुपाद को एक जादूगर अथवा चमत्कार करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसा करने लगे, उन्होंने किसी विशेष शक्ति

इत्यादि रखने से मना कर दिया। 9 जनवरी 1973 को मुम्बई में उनका ब्योरा इस प्रकार है–

> हाँ, हमें बहुत अधिक गर्वित नहीं होना चाहिये कि "मैने अद्‌भुत कार्य किया है" क्यों?... कभी-कभी व्यक्ति मुझे इतना अधिक सम्मान देते हैं- "स्वामीजी, आपने अद्‌भुत कार्य किया।" मैं नहीं अनुभव करता कि मैंने अद्‌भुत (वस्तु) बनायी है। मैंने क्या किया है? मैं कहता हूँ कि मैं एक जादूगर नहीं, मुझे कुछ अद्‌भुत कार्य नहीं आता। मैं केवल भगवद्‌गीता यथारूप प्रस्तुत कर रहा हूँ, इतना ही। यदि कोई श्रेय है, केवल यही श्रेय है। कोई भी इसे कर सकता है। कोई भी भगवद्‌गीता यथारूप प्रस्तुत कर सकता है। अतः वह अद्‌भुत कार्य करेगा। मैं जादूगर नहीं। मैं योगसिद्धि एवं जादू टोने नहीं जानता... अतः मेरे एकमात्र श्रेय है, मैं इस शुद्ध भगवद्‌गीता शिक्षा में कोई दुष्टता नहीं मिलाना चाहता, इतना ही। वह मेरा श्रेय है। तथा जो कोई भी चमत्कार किया गया है, वह इसी सिद्धांत पर, इतना ही।

गवर्निंग बॉडी कमिशनः इस्कॉन में 1970 के उपद्रव ने श्रील प्रभुपाद को भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की एक अन्य अपूर्ण इच्छा को संतुष्ट करने का अवसर दिया। एक गवर्निंग बॉडी का निमार्ण, संपूर्ण संस्था को चलाने के लिये। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर द्वारा अपने अंतिम दिनों में अपने शिष्यों को दिये गये अंतिम निर्देशों में यह आज्ञा थी।[64] इस आज्ञा की अवज्ञा ने श्रील प्रभुपाद के अनुसार, गौड़ीय मठ का अवखण्डन करवाया। (चैतन्य चरितामृत आदि 12.8, तात्पर्य)

> प्रारंभ में ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद की उपस्थिति में, सभी शिष्यों ने सहमति से कार्य किया, परन्तु उनके तिरोभाव के तुरन्त पश्चात वे असमत हो गये। एक दल ने भक्तिसिद्धांत

[64] यह आज्ञा 31 दिसम्बर 1936 को उनके इच्छापत्र के लिखे गये मिनटों में प्रदत थी। मूल लिखित प्रमाण कलकत्ता के भक्तिवेदान्त अनुसंधान केन्द्र में संरक्षित है। एक प्रतिलिपि के लिये एम. एच. पी. 289 को देखें।

सरस्वती ठाकुर की आज्ञाओं का दृढ़तापूर्वक पालन किया, परन्तु एक अन्य दल ने उनकी इच्छाओं के निष्पादन की अपनी ही मनोकल्पना बना दिया। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने अपने तिरोभाव के समय सभी शिष्यों से एक गवर्निंग बॉडी बनााने तथा सहमति से मिशनरी कार्यों को संचालन करने का आग्रह किया। उन्होंने किसी एक विशेष व्यक्ति को अगला आचार्य बनने की आज्ञा नहीं दी थी। परन्तु उनके चले जाने के तुरन्त पश्चात उनके प्रमुख सचिवों ने बिना अधिकार के योजनाएँ बनाईं, तथा वे दो भागों में विभाजित हो गये (कलकत्ता का "गौड़ीय मिशन" तथा मायापुर के "गौड़ीय मठ") इस विषय पर कि अगला आचार्य कौन होगा। परिणाम स्वरूप दोनों दल असार अथवा व्यर्थ थे, क्योंकि आध्यात्मिक गुरु की आज्ञा की आवज्ञा करके उनके पास कोई अधिकार नहीं था। आध्यात्मिक गुरु के गवर्निंग बॉडी बनाने तथा गौड़ीय मठ के मिशनरी कार्यों को निष्पादित करने की आज्ञा होते हुए भी, दोनों अनाधिकृत दलों ने कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जो चालीस वर्ष पश्चात अब भी बिना निर्णय के चल रही है।

अत: हम किसी भाग में नहीं आते। परन्तु क्योंकि दोनों दलों ने गौड़ीय मठ संस्था की भौतिक सम्पत्तियों के विभाजन में व्यस्त होकर प्रचार कार्य रोक दिया, हमने भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर एवं भक्तिविनोद ठाकुर का चैतन्य महाप्रभु के पंथ को पूरे विश्व में प्रचार करने के मिशन को उठाया, जो कि सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के संरक्षण में था, तथा हम यह देखते हैं कि हमारा विनम्र प्रयास सफल हुआ है।

हमने विशेषकर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की भगवद्गीता के व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन (भ.गी. 2.41) से प्रारम्भ होते हुए श्लोक की टिप्पणी में विशेषकर समझाये गये आदर्शों का पालन किया। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार शिष्य

का कर्तव्य है कि वह अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करे। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति का रहस्य है शिष्य का गुरु की आज्ञाओं पर दृढ़ श्रद्धा व्यक्ति को हर कार्य को उसके फल से आंकना चाहिये। स्वयं नियुक्त आचार्य के दल के सदस्य, जिन्होंने गौड़ीय मठ की सम्पत्ति में स्थान लिया था, वे संतुष्ट हैं, परन्तु वे प्रचार में कोई प्रगति नहीं कर सके। अतः उनके कार्यों के परिणाम से व्यक्ति को यह जानना चाहिये कि वे असार, अथवा व्यर्थ हैं, जबकि इस्कॉन दल, अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ जो दृढ़तापूर्वक गुरु एवं गौरांग का अनुसरण करता है, उसकी सफलता संपूर्ण विश्व में प्रतिदिन बढ़ते जा रही है।

जुलाई 28, 1970 को गवर्निंग बॉडी कमिशन की स्थापना श्रील प्रभुपाद का दूसरा शक्तिशाली प्रत्युपाय था जो असंयुक्ति के रौगन के विरुद्ध इस्कॉन में खोल दी गई थी। जी.बी.सी. उस प्रकार की संस्था है- एक समिति[65] जो सहकार्यता माँगती एवं उसे प्रोत्साहित करती है। भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के नेता ऐसे गवर्निंग बोर्ड का साक्षात्कार करने में असफल हुए। यदि गौड़ीय मठ उनकी अवज्ञा के कारण विखंडित नहीं होता, तब पाश्चात्य जगत में भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के अनेक शिष्य एक साथ कार्य कर रहे होते। इस परिस्थिति में, श्रील प्रभुपाद अकेले आये, तथा उन्होंने अकेले ही कृष्ण ाभावनामृत आन्दोलन को पुनजीर्वित किया। जब गुरुभाइयों ने सक्रिय अथवा निष्क्रिय रूप से सहकार्यता को टुकराया, उनके पास इस्कॉन के नेतृत्व में एकमात्र आचार्य होने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था।

तथापि उनके गुरु ने स्वयं उनके पश्चात संस्था का नेतृत्व करने के लिये एक गवर्निंग बोर्ड माँगा था। श्रील प्रभुपाद ने यह आग्रह हृदय में लिया। इधर भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की एक अन्य इच्छा असंतुष्ट रही थी, तथा श्रद्धावान सारस्वत श्रील प्रभुपाद ने उन्हें संतुष्ट करने के लिये भार उठाया। उन्होंने ऐसे बोर्ड की स्थापना की उसके विकास का निरीक्षण करेगें तथा उसे

[65] व्युत्पत्ति विषयक रूप से यह शब्द लैटिन कम्मिट्र् से जुड़ा है, जिसका अर्थ "जोड़ना संयुक्त करना" है।

उनके उत्तराधिकारी के रूप में इस्कॉन का नेतृत्व करने के लिये तैयार किया।

भारत में यह प्रचलित है कि एक आचार्य अपनी संस्था को अपने द्व ारा चुने गये उत्तराधिकारी को अपने इच्छापत्र में विरासत के रूप में छोड़े। श्रील प्रभुपाद ने 1970 में जो कदम उठाया जी.बी.सी. की स्थापना उसने 1977 में इसे "इच्छापत्र की घोषणा" का प्रथम प्रावधान व्यवस्थित करने में उन्हें अनुमत किया। गवर्निंग बॉडी कमिशन संपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण ाभावनामृत संघ का सर्वोच्च प्रबन्धक अधिकारी होगा। इस प्रकार जी.बी.सी. की स्थापना कर एवं उसे इस्कॉन के नेतृत्व में अपने द्वारा चुना गया उत्तराधिकारी छोड़कर श्रील प्रभुपाद ने यह सुनिश्चित किया कि भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की आज्ञा संसार में प्रभाव के साथ कार्य करना जारी करेगी तथा फल प्रदान करेगी।

इस्कॉन के आध्यात्मिक आकारिकी में अत्यावश्यक भागों को श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित किये जाने की अंतिम स्थिति भी लगभग इस समय प्रारंभ की गई थी। अत्यंत कठिनाई एवं अनेक बाधाओं के पश्चात् जो प्रमुख रूप से गुरुभाइयों के सक्रिय एवं निष्क्रिय विरोध के द्वारा घटित थे।[66] श्रील प्रभुपाद इस्कॉन के लिये मायापुर में भूमि खरीद पाये तथा उन्होंने उधर एक बृहत मन्दिर के लिये अपनी योजनायें व्यक्त की। कलकत्ता से गोविन्द दासी को लिखते हुए (28 मई, 1971), उन्होंने कहा:

> आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने लगभग पाँच एकड़ भूमि भगवान चैतन्य के जन्मस्थली मायापुर में खरीदी है, तथा हमने उधर जन्माष्टमी दिवस से दो सप्ताह के लिये एक भव्य महोत्सव आयोजित करना प्रस्तावित किया है। उस समय

[66] सत्स्वरूप दास गोस्वामी वर्णन करते हैं (श्रील प्रभुपाद लीलामृत 4.95) "यद्यपि वे जानते थे कि उनके शिष्य कभी अज्ञानी थे परन्तु द्वेषपूर्ण नहीं थे। तथापि भारत से यह पत्र उस आध्यात्मिक रोग को साथ लिये था जो प्रभुपाद के अनेक गुरुभाइयों ने उनके उधर के शिष्यों में फैला दिया था। प्रभुपाद पूर्व में ही समस्या में पड़ चुके थे जब उनके कुछ गुरुभाइयों ने उन्हें भगवान् चैतन्य की जन्मस्थली मायापुर में भूमि प्राप्त (सुरक्षित) करने में सहायता करने से इन्कार कर दिया था। तथ्य में उनमें से कुछ ने उनके विरुद्ध कार्य किया था। प्रभुपाद ने अपने एक गुरुभाई को लिखा था मैं यह जानकर बहुत दु:खी हूँ कि हमारे कुछ गुरुभाइयों का षडयंत्र है, कि मुझे मायापुर में स्थान न दें।"

> (मन्दिर के लिये) नींव की शिला स्थापित की जायेगी। मैं यह चाहता हूँ कि हमारे सभी प्रमुख शिष्य उस समय भारत आये। 50 शाखाएँ हैं। अतः हर शाखा से कम से कम एक को उस महोत्सव में उपस्थित होना चाहिये।

मन्दिर के नींव की स्थापना का महोत्सव कर, श्रील प्रभुपाद ने भवन की पूर्णता के लिये स्वयं को वचनबद्ध किया। जैसा व्यतीत हुआ, नींव की स्थापना ही 1972 के गौर पूर्णिमा तक बिलम्बित हो गयी थी। तथा आने वाले वर्षों में अनेक परिवर्तनों ने इस्कॉन नेताओं को पुनः ड्राईगं बोर्ड की ओर भेजा। तथापि श्रील प्रभुपाद का व्यक्तिगत वचन जिसकी 1972 में स्थापना हुई थी जैसा कि वह प्रण हो। उसने सभी अढ़चनों के ऊपर, नीचे, चारो ओर तथा बीच में से संगठित प्रयास को चलाने के लिये शक्ति रखी है, तथा वैदिक ताराघर का मन्दिर अन्तरद्विप के जलोढ़ मृदा पर खड़ा हो रहा है। श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन के "विश्व मुख्यालय" के लिये भूमि प्राप्त करने तथा उस पर एक असाधारण मन्दिर निर्माण करने पर अत्यंत प्राथमिकता दी शनैः शनैः श्रील प्रभुपाद के नेता उनके लिये उसके महत्व को समझने लगे। उदाहरणतः (श्रील प्रभुपाद लीलामृत 5.9)।

> कलकत्ता की इस यात्रा में (नवम्बर 1971) प्रभुपाद ने मायापुर के लिये अपनी योजनाओं के विषय में भी कहा था। नर नारायण ने इस्कॉन द्वारा प्राप्त नई भूमि पर बनाये जाने वाली इमारत का एक नाप का प्रतिरूप बनाया था, तथा प्रभुपाद ने उसे अपने सभी अतिथियों को दिखाया था एवं उनसे सहायता माँगी थी। प्रभुपाद की इस परियोजना में मग्नता देखकर, गिरिराज ने किसी भी प्रकार से सहायता करने के लिये स्वेच्छा से सेवा के प्रति समर्पित था। ऐसा लगता है कि दो वस्तुएँ जो आपकी सबसे तीव्र इच्छा है गिरिराज ने कहा था, कि ग्रन्थ वितरित हों तथा मायापुर में मन्दिर का निर्माण हो। "हाँ", प्रभुपाद ने कहा था, मुस्कुराकर "हाँ, धन्यवाद।"

हम श्रील प्रभुपाद की प्राथमिकता का एक अधिक बेहतर समझ प्राप्त

करते है, जब हम इस मन्दिर को गौड़ीय वैष्णव मंदिर निर्माण विद्या के प्रकाश में समझते हैं, जो भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर की संस्था के नींव में थी, ऐसा हमने देखा है। हमने यह उल्लेखित किया है कि श्रील प्रभुपाद ने उसे ही गिरजा निर्माण विद्या के आधार पर इस्कॉन का निर्माण किया था। गौड़ीय मठ संस्था का मायापुर में 'श्रीचैतन्य मठ' केन्द्रीय अथवा पैत्रिक मन्दिर है, तथा अन्य सभी उसकी शाखाएँ है। कलकत्ता में गौड़ीय मठ एवं श्रीचैतन्य मठ में भेद एक दीपक के दूसरे द्वारा उज्वलित किये जाने के भेद समान है, हार्मोनिस्ट में (ब्रह्मसंहिता 5.46 का संकेत करते हुए) एक लेख समझाता है। मायापुर में स्थित केन्द्रीय मन्दिर अवतरित आध्यात्मिक क्षेत्र (श्वतेद्वीप), वास्तव में दिव्य रूप से स्थित मूल, जहाँ भगवान् एवं आचार्य शाश्वत रूप से साथ रहते हैं, उसका प्रत्यक्ष भौतिक पूरक अथवा प्रतिस्थानी है। दिव्य मायापुर में आचार्य के स्थान में सेवा के लिये साधकों के प्रशिक्षण के लिये, विभिन्न शाखाएँ है। संस्था का केन्द्रीय अथवा पैत्रिक मन्दिर इस प्रकार सीमा पर स्थित होकर, जैसा कि वह दो लोकों के बीच हो, एक द्वार का कार्य करता है। उसकी सम्बन्धित शाखाएँ, यद्यपि वे भौतिक क्षेत्र में तितर बितर है, उनके केन्द्र के साथ सम्बन्धों के कारण, स्वयं में भी द्वारों का कार्य करते हैं।

केन्द्र में स्थित श्रीचैतन्य मठ अपने शिल्प विद्या के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान करता है, उस अपने अलंकारों एवं उपांगों आध्यात्मिक विज्ञान का जो ऐसे द्वारों को संभव बनाने के लिये संयुक्त आदर्श प्रतिस्थापित करता है– अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व। केन्द्रीय शिखर के चारों ओर पक्का परिक्रमा मार्ग, परिक्रमा करने वाले आगंतुक को एक के बाद एक चार वैष्णव संस्थापक आचार्यों के रूपों का दर्शन कराता है, जो कि शिखर के बाहरी भाग में अपनी वेदी पर हैं। वे शिखर के तल के चारों ओर समान्तर दूरी पर हैं, परन्तु भवन अपने आप से उन्हें श्रीचैतन्य मठ के चारो ओर एक साथ आकर्षित करता है।

इन प्रत्येक संस्थापकाचार्यों ने भगवान् एवं उनकी शक्तियों के बीच सम्बन्ध के विषय में एक विशिष्ट शिक्षा का प्रचार किया। यद्यपि हर दर्शन ठोस है, वह अपूर्ण भी है, जिसे निशिकान्त सन्याल 'श्रीकृष्ण चैतन्य' में दृढ़तापूर्वक कहते हैं। परन्तु भगवान् चैतन्य की शिक्षा जो अचिन्त्य भेदाभेद

तत्त्व के रूप में औपचारिक रूप से प्रदत्त हैं उन्हें मेल-मिलाप कराता, एक समान एवं पूर्ण करता है। (श्रीकृष्ण चैतन्य 164) मंदिर इस गौड़ीय वैष्णव सिद्धांत का निरूपण करता है तथा इस प्रकार इस बात को प्रस्तुत करता है जो श्रीकृष्ण चैतन्य में इतना पूर्ण रूप से प्रसारित किया गया है- कि युगवतार महाप्रभु आस्तिकता की पूर्णता एवं पूर्ण संतुष्टि प्रदान करते हैं।

इस्कॉन का वैदिक ताराघर का मन्दिर श्रीचैतन्य मठ द्वारा प्रस्तुत उस ही सिद्धांत को अधिक विस्तृत एवं अधिक व्यापक रूप से प्रस्तुत करता है। विश्वस्तरीय रूप से देखा जाए तो यह अचिन्त्य-भेदा-भेद तत्त्व सिद्धांत को सुव्यवस्थित और व्यवहारिक रूप से प्रस्तुत करता है—जिसके अनुसार सभी वस्तुएं कृष्ण से अभिन्न हैं, लेकिन फिर भी कृष्ण इन सभी से भिन्न हैं।[67] मंदिर के मुख्य गुम्बद में ब्रह्माण्ड का प्रस्तुतीकरण यह दर्शाता है कि किसी प्रकार से भगवान कृष्ण की शक्तियाँ कृष्ण से सम्बंधित हैं। इस प्रस्तुतीकरण के द्वारा दो भ्रामक सिद्धांतों का खंडन होता है, एक है "निर्विशेषवाद" जिसके अनुसार भगवान और उनकी शक्तियाँ दोनों ही भ्रम हैं और इनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं हैं। दूसरा जो भौतिकवाद या शून्यवाद जो की सृष्टि में भगवान की शक्तियों को केवल पहचानता है। जिनका कोई उगमस्थान अथवा नींव नही हैं।

भगवान और उनकी दिव्य सृष्टि के बीच में दिव्य सम्बंध को प्रदर्शित करके (विविध प्रकार के आकारों, रूपों, तकनीकों का प्रयोग करके) यह मंदिर एक अलौकिक अनुभूति कराएगा। मंदिर की अंदर के दीवारों पर विविध ब्रह्माण्ड के बहु-स्तरीय चित्रणों द्वारा भगवान कृष्ण के धाम, वैकुंठ और भौतिक जगत का प्रदर्शन किया जाएगा जिसका वर्णन श्रील सनातन गोस्वामी विरचित बृहद भागवतामृत में गोप कुमार नामक भक्त के द्वारा अनुभवित होता है। इस प्रकार से यह मंदिर सर्व सम्मलित जीवन की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है।

---

[67] श्रील प्रभुपाद के द्वारा अचिन्त्य भेदाभेद पर दो स्मरणीय विश्लेषण, सब कुछ कृष्ण से अभिन्न है, लेकिन कृष्ण का इन सभी वस्तुओं से परे सर्वोच्च स्थान है। (गीता 18.78) कृष्ण के अलावा और कुछ भी नहीं है, लेकिन फिर भी कोई भी वस्तु स्वयं कृष्ण नहीं हैं जो कि अपने आदि रूप में सदैव विद्यमान हैं। (श्री चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, 1.51, तात्पर्य)

1972 तक अपने सभी पांच आयामों के प्राप्ति में से यह मंदिर आखिरी आयाम है, जिसमें इस्कॉन के सभी मूलभूत आयामों को सुव्यवस्थित किया हैं यह मंदिर इस्कॉन के सारी अध्यात्मिक संरचना को प्रतिपादित करता है। विश्व भर में फैले सारे मंदिरों को यह मायापुर का मंदिर ठीक वैसे ही जोड़ता है जैसे की सारी जड़े पेड़ के तने के साथ जुड़ी होती हैं। मायापुर का यह मंदिर सारे विश्व से सभी बद्धजीवों को भगवद् धाम का प्रवेश द्वार दिखाता है और समृद्धिशाली अध्यात्मिक जगत में प्रवेश कराता है।

यही संस्थापकचार्य का कार्य होता है। संस्थापकचार्य वह मार्ग प्रशस्त करते हैं जो कि भौतिक ब्रह्माड के परे हमें अलौकिक स्थान में ले जाए। संस्थापकाचार्य यह योजना बनाते हैं कि जड़ की नोक से लेकर वृक्ष की पत्तियों की नोक तक आश्रित सभी जीवात्माओं को नियमित पोषण और प्रशिक्षित एवं मार्गदर्शन मिले जो कि दिशानिर्देशन, रक्षा और प्रेरणा दे सके ताकि जीवात्माएं अपना यह आध्यात्मिक सफर तय कर सकें। यह समर्पित आश्रितों का निरंतर निरीक्षण करते रहते हैं। यह आध्यात्मिक जगत का वास्त. विक प्रतिरूप प्रस्तुत करते हैं, जिससे कि बुद्धिमान और अल्पबुद्धिमान दोनों ही इस प्रतिरूप से प्रेरणा ले सकें। यह विविध प्रवेशद्वारों के द्वारा विश्व को एक करने की प्रक्रिया है। यह सारे पथ अंतरद्वीप में मिलते हैं और यह सारे पथ बड़ी सुंदरता से यह बताते हैं कि किस प्रकार जीव स्वर्गादि लोकों से होता हुआ अंतत: अध्यात्मिक जगत में कृष्ण के पास मिलता है।[68]

इस्कॉन के सभी केंद्रों के प्रवेश द्वार पर श्रील प्रभुपाद की श्रीमूर्ति यह इंगित करती है की श्रील प्रभुपाद सभी भक्तों के संरक्षक हैं। नवद्वीप धाम में भी प्रवेशद्वार पर श्रील प्रभुपाद के एक कांतिमान रूप में अपनी पुष्प समाधी पर आसीन हैं। इससे यह इंगित होता है कि चाहे इस पृथ्वी पर यह इस्कॉन

[68] यह प्रवेश द्वार वास्तव में श्रील प्रभुपाद के हृदय का बाह्य प्रकटीकरण है। उनका हृदय विशाल और करुणा से भरा है, जो कि सारे ब्रह्माण्ड को तारने के लिए भी तत्पर था। एक मंदिर को प्रकट करने वाला था, चाहे वह स्वयं 1966 में, मैनहट्टन की कड़क सर्दी में सड़क पर ही क्यों न चल रहे हों आज वही विचार विशाल स्तर पर, सभी अपनी कृपा बरसाने के लिए प्रकट हो रहा है।

का केंद्र हो या न अध्यात्मिक जगत में, गौर लीला[69] में स्थित दिव्य इस्कॉन का केंद्र, श्रील प्रभुपाद सभी आने वाले जीवों का स्वागत करते हैं। इस प्रकार से श्रील प्रभुपाद भवसागर से मुक्त जीवात्माओं को सर्वश्रेष्ठ अध्यात्मिक जीवन प्रदान करते हैं।

श्रील प्रभुपाद ने अपनी परियोजना की शुरूआत अपनी पहली पुस्तक "अन्य लोकों की सुगम यात्रा" के द्वारा प्रारंभ कर दी थी और उन्होंने यह कार्य लेखन, प्रकाशन और पुस्तक वितरण के माध्यम से जारी रखा और साथ ही एक विश्वस्तरीय संस्था का भी अनुमोदन किया। उनके द्वारा प्रारंभिक कार्य आज वैदिक अंतरिक्ष शाला के रूप में सुसज्जित हो रहा है जो कि श्रीमद् भागवतम और भक्त भागवत की महिमा प्रचारित कर रहा हैं। यह इस्कॉन के संस्थापकाचार्य के अनुमोदित सृष्टि के धुरी पर मायापुर धाम, जो अध्यात्मिक धाम से अवतरित हुआ है, कि विशेष स्थिति को स्थापित करता है।

लौह युग के चार मुख्य आचार्यों ने अपने सामर्थ्य के साथ वेदव्यास द्वारा दिए गए वेदांत दर्शन की आस्तिक एवं वैष्णव व्याख्या को सिखाया और अन्यों को प्रशिक्षण भी दिया इस प्रकार से भ्रामक निराकारवाद का दिखावा ध्वस्त हुआ और वास्तविक वैदिक सिद्धांत का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अनुसार चारों आचार्यों ने श्री चैतन्यमहाप्रभु के आगमन की तैयारी की जो कि आगे चलकर वेदों के सर्वाधिक गोपनीय तात्पर्यों को संकीर्तन के माध्यम से सभी के लिए प्रकाशित करने वाले थे। महाप्रभु ने अपने पार्षदों को प्रेरित किया कि व्यवस्थित रूप से अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धांत को प्रचारित करें जिसमें संस्थापकचार्यों के सिद्धांतों को पूर्णरुपेण निहित किया गया हो। महाप्रभु के इन विशेष पार्षदों को "प्रभुपाद" की उपाधि से विभूषित किया गया।

अब दो और महाप्रभु के पार्षद हैं जिन्हें "प्रभुपाद" की उपाधि से विभूषित किया गया है—श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद एवं श्रील अभयचारणाविंद भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद। इनमें से पहले आचार्य ने महाप्रभु

[69] देखिए वेदाबेस पत्र तुष्ट कृष्ण, 14 दिसम्बर, 1972, हमारा वहाँ (आध्यात्मिक जगत में) एक अन्य इस्कॉन होगा।

के आंदोलन के प्रचार हेतु योजनाएं और रणनीति बनाई और दूसरे आचार्य ने उन योजनाओं को कार्यशील किया। गौडीय मठ संस्था में संस्थापकाचार्य की उपाधि केवल श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर को दी गई है, परंतु परिस्थितिवश वह कृष्णभावना का विस्तार विश्व भर नहीं कर पाए और उनके शिष्य ने अपने गुरु की कृपा से कृष्ण भावना का कार्य आगे बढ़ाया जहाँ उनके गुरु महाराज ने छोड़ा था और बारह वर्षों में युग धर्म को पूरे विश्व में फैला दिया। इस प्रकार से चार संस्थापकचार्यों के करुणामय प्रयासों को महाप्रभु के कृपा से फैलाया और पूर्ण किया जो इस उपाधि के योग्य है।

श्रील प्रभुपाद की अद्वितीय उपलब्धियों के कारण "प्रभुपाद" से उन्हें सम्मानित करना सर्वथा उचित है, लेकिन साथ यह भी समझना आवश्यक है कि श्रील प्रभुपाद ने कोई "नया सम्प्रदाय" नहीं प्रारंभ किया। गौडीय सम्प्रदाय की शिक्षाओं और कार्यपद्धतियों को श्रद्धापूर्वक प्रचार के द्वारा उन्होंने परम्परा को जारी रखा, लेकिन फिर भी श्रील प्रभुपाद ने उसी परम्परा को अपने दिव्य साक्षात्कार से विशेष रूप में प्रस्तुत किया है। परिणामस्वरूप उनके दिशा निर्देशन में गौडीय सम्प्रदाय आज एक नये और सशक्त रूप में अपनी शिशु अवस्था से विकसित होकर आज विश्वभर में सभी का पोषण कर रहा है।

ऐतिहासिक रूप से गौड़ीय सम्प्रदाय ब्रह्म मध्व सम्प्रदाय की शाखा के रूप में दिखाई पड़ता है। क्योंकि भगवान चैतन्य जो वास्तव में सभी चारों सम्प्रदाय के स्रोत हैं—भक्त रूप में अवतरित हुए। इस रूप में उन्होंने चार अधिकृत सम्प्रदायों में से एक में उचित वैष्णव दीक्षा प्राप्त की। हालांकि उनकी शिक्षाएं जो छ: गोस्वामियों के द्वारा व्यवस्थित व प्रतिपादित की गई थी, जो मध्व सम्प्रदाय के मानक शिक्षण से इतनी अधिक भिन्न थी, जिससे उन्होंने दीक्षा प्राप्त की थी, कि महाप्रभु के अनुयायियों को स्वाभाविक रूप से एक अलग सम्प्रदाय-समुदाय के रूप में जाना गया। जब इस समूह को चुनौती दी गई तब बलदेव विद्याभूषण ने अपनी प्रामाणिक गुरु परम्परा को स्थापित करने के लिए सफलतापूर्वक वेदांत-सूत्र की गौड़ीय-वैष्णव टीका 'गोविंद भाष्य' प्रस्तुत किया। इस प्रकार औपचारिकता से अठारहवीं शताब्दी में, गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदायों से भिन्न होने की पावती मिली।

हालांकि गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय को एक विशेष दर्जा प्राप्त है, फिर भी हम अन्य सम्प्रदायों के बीच एक और नए सम्प्रदाय के रूप में स्थापित नहीं हो सकते। बल्कि गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय को सही ढंग से समझकर कलियुग में पहले से ही स्थापित चार सम्प्रदायों का एकीकृत तथा पूरक समझकर मान्यता देनी चाहिए। इस तरह की समझ की प्राप्ति व उसका रहस्योद्घाटन श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा 1890 में उनके द्वारा प्रलेखित दूरदर्शी श्री नवद्वीपधाम महात्म्य में प्रतिपादित किया गया। इसमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने श्रील जीव गोस्वामी की नवद्वीप परिक्रमा (चैतन्य महाप्रभु के तिरोभाव के तुरंत बाद) जो उन्होंने नित्यानंद प्रभु के मार्गदर्शन में की, का विस्तृत वर्णन किया है जैसे कि वे इसके प्रत्यक्षदर्शी हों। अपनी यात्रा के दौरान प्रभु नित्यानंद ने श्रील जीव गोस्वामी को वर्णन किया कि किस प्रकार कलियुग के चारों सम्प्रदाय के संस्थापकाचार्यों को भविष्य में होने वाले युगावतार[70] के आविर्भाव का रहस्य उजागर किया गया, जब वे स्वयं जगन्नाथपुरी या नवद्वीप की तीर्थयात्रा पर थे। चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्येक को गोपनीयता की शपथ में बांधते हुए उनका उत्थान किया व अपने भविष्य के आगमन के लिए काम करने को प्रेरित किया। उदाहरण के लिए स्वंय भगवान मध्वाचार्य के सपने में आये और बोले। (श्रीनवद्विप धाम महात्म्य 68):

> हर कोई जानता है कि तुम मेरे नित्य दास और अनन्य भक्त हो। जब मैं नवद्वीप में अवतरित होऊंगा तब मैं सम्प्रदाय को स्वीकार करूंगा। अब तुम विभिन्न स्थानों पर जाओ और मायावादियों के झूठे कथनों से युक्त शास्त्रों को उखाड़ फेंको और भगवान के विग्रह की अर्चना की महिमा को प्रकाशित करो। बाद में मैं तुम्हारी शुद्ध शिक्षाओं को प्रसारित करूंगा।

जब भगवान चैतन्य निम्बादित्य (या श्रील निम्बार्काचार्य) के समक्ष प्रकट हुए तब भगवान ने यह बताया कि किस प्रकार वे भविष्य में चारों संस्थापकचार्यों के शिक्षाओं को एकत्रित कर एक सम्पूर्ण ज्ञान देंगे जो उनकी

---

[70] इसी तरह भगवान शंकराचार्य के समक्ष उपस्थित हुए व उन्हें "अपने दास" के रूप में स्वीकार किया व उनसे बोले– "नवद्वीपवासियों को दूषित मत करो।" शंकराचार्य अपने हृदय में भक्ति का बीज लिए वहां से चले गए। (श्रीनवद्विपधाम महात्म्य 68-9)

शिक्षाओं को पूर्णतया प्रदान करने वाला निष्कर्ष प्रदान करेगा। (नवद्वीप धाम महात्म्य 73):

> बाद में जब मैं संकीर्तन आंदोलन की शुरूआत करूंगा तब मैं स्वयं चारों वैष्णव सम्प्रदायों के दर्शन के सार का प्रचार करुँगा। श्री मध्वाचार्य से मैं दो आवश्यक शिक्षाएं लूंगा, मायावाद दर्शन का खंडन और कृष्ण के विग्रह रूप को सनातन और दिव्य मानते हुए उनका अर्चन। श्रील रामानुजाचार्य से मैं दो शिक्षाएं लूंगा, निर्वेशेष ज्ञान और भौतिक कर्म के प्रदूषण से रहित भक्ति की अवधारणा और वैष्णवों की सेवा। श्रील विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय से मैं दो शिक्षा स्वीकार करूंगा, कृष्ण पर पूर्ण निर्भरता की भावना और रागानुगा भक्ति के मार्ग का अनुशीलन और तुमसे (श्रील निम्बार्काचार्य) भी मैं दो शिक्षाएं लूंगा, श्रीमती राधारानी की शरण लेने की आवश्यकता और कृष्ण के लिए गोपियों के प्रेम का उच्च सम्मान।

अंत में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकटय् से सभी सम्प्रदायों को वास्तविक निष्कर्ष प्राप्त हुआ। इस निष्कर्ष के द्वारा एक नए युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु एक प्रवर्तक के रूप में प्रकट हुए व उन्होंने एक अभूतपूर्व विशाल रहस्य को खोला, जिसे सर्वप्रथम षड् गोस्वामियों ने प्राप्त किया व इस रहस्य का प्रचार किया। तत्पश्चात श्रील प्रभुपाद ने एक आचार्य के रूप में सम्पूर्ण विश्व में श्री कृष्ण भक्तों की एक संस्था स्थापना की और उसका विस्तार किया। उन्होंने इसे अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) का नाम दिया। जिन्होंने अपने भक्तिमय ज्ञान की शक्ति के द्वारा इस संस्था को शक्ति प्रदान की और अपनी संस्था के अध्यात्मिक मुखालय को अंतरद्वीप में जो अध्यात्मिक जगत के श्वेतद्वीप का प्रतिरूप है, में स्थापित किया। जिससे कि श्री चैतन्य महाप्रभु के बारे में विश्व को रहस्योद्घाटन किया और जगत को वापस उनकी सेवा में लगाया।

श्रील प्रभुपाद का दिव्य ज्ञान : यह हमारा सौभाग्य है कि श्रील प्रभुपाद ने खुले रूप से बताया कि उन्होंने कैसे दिव्य ज्ञान प्राप्त किया और उसके द्वारा

गुरु के मनोभीष्ट को पूरा करने के योग्य बनाया एवं भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य आंदोलन को विश्व स्तरीय रूप में स्थापित किया। श्रील प्रभुपाद ने 1968 में लॉस एंजिलिस मंदिर के उद्घाटन समारोह में श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के तिरोभाव के दिन एक अद्भुत बात कही। कई सारे अमेरिकी लोगों के चेहरों को उनकी ओर उठा देखकर वह विस्मयता से बोले—

> "मेरा जन्म एक अलग परिवार में हुआ, मेरे गुरु महाराज का जन्म एक अलग परिवार में हुआ। कौन जानता था कि मैं उनके सरंक्षण में आऊंगा? कौन जानता था कि मैं अमेरिका आऊंगा? कौन जानता था कि आप सभी अमेरिकी लड़के मेरे पास आओगे? यह सब कृष्ण की व्यवस्था हैं हम नहीं समझ सकते किस प्रकार से चीजें सुव्यवस्थित हो रही हैं।

फिर उसके बाद श्रील प्रभुपाद ने बताया कि उस दिन वह लॉस एंजिलिस में किस वजह से खड़े थे।"

> सन 1936, आज नौ दिसम्बर, 1968—अर्थात 32 वर्ष पूर्व जब मैं मुम्बई में था और कुछ व्यापार करता था। तभी अचानक शायद सही दिनांक थी—नौ-या दस दिसंबर—उस समय गुरु महाराज की तबियत कुछ ठीक नहीं थी और वह जगन्नाथपुरी के समुद्र के किनारे थे तब मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। मेरे प्रिय गुरु महाराज आपके बाकी शिष्य—ब्रह्मचारी और संन्यासी—यह तो आपकी प्रत्यक्ष सेवा कर पाते हैं और मैं एक गृहस्थ होने के कारण आपके निकट नहीं रह पाता और आपकी सेवा भी ठीक से नहीं कर पाता हूँ। अतः मुझे नहीं पता कि मैं आपकी सेवा कैसे कर पाऊंगा? बस यह एक विचार था। में बस यही विचार कर रहा था कि मैं उनकी सेवा गंभीरतापूर्वक कैसे करूँ।

यह विचार ही बीज रूप में था। अपने व्यवसाय में संलग्नता से निराश, स्वयं को अयोग्य मानते हुए और अपने आश्रम के कर्तव्यनिर्वाहन के कारण एक दिन अपने हृदय से प्रार्थनायुक्त क्रंदन कर उठे। वह अपने आपको बंधन

में महसूस करने लगे जिसकी वजह से उचित सेवा कर पाना संभव नहीं हो पा रहा था, लेकिन फिर भी सेवा करने की इच्छा थी। अत: उन्होंने अपने हृदय की इच्छा को और उद्‌गार को अपने गुरु महाराज को व्यक्त किया।

श्रील प्रभुपाद लिखते हैं—

> पत्र का उत्तर प्राप्ति की दिनांक थी 13 दिसम्बर, 1936। पत्र में उन्होंने लिखा था— "हे प्रिय, मुझे तुम्हारा पत्र प्राप्त करके बड़ा हर्ष हुआ। मुझे लगता है कि तुम्हें हमारे आंदोलन को अंग्रेजी भाषा में प्रचारित करना चाहिए। यह उनका लेखन था।" इसी में तुम्हारा भी भला होगा और उन सबका भी जो तुम्हारी सहायता के लिए आएंगे। यह उनका निर्देश था। और फिर 1936 में उस दिन के पंद्रह दिन बाद 31 दिसम्बर को, अर्थात यह पत्र लिखने के तुरंत बाद— वह हम सभी को छोड़कर चले गए, परंतु मैंने अपने गुरु महाराज के उस आदेश को बहुत गंभीरता के साथ लिया। परंतु मुझे नहीं लगता था कि इसे पूरा करने के लिए क्या करना पड़ेगा। मैं उस समय एक गृहस्थ था, परंतु यह सब कृष्ण की व्यवस्था थी। यदि हम दृढ़ता के साथ गुरु के आज्ञा का पालन करते हैं तो कृष्ण सभी प्रकार की सुविधा प्रदान करते हैं। यही रहस्य है। हालांकि यह बिल्कुल संभव नहीं था, लेकिन मैंने कभी असंभवता के ऊपर विचार नहीं किया।

यह एक आश्चर्यजनक, अनापेक्षित, तर्कहीन और पूरी तरह से असंभावित आज्ञा थी—"तुम्हें हमारे आंदोलन को अंग्रेजी भाषा में प्रचारित करना चाहिए।" यह वास्तव में गौडीय मठ के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ था। इसका अर्थ था—पश्चिम जगत जाना—अमेरिका और यूरोप। यह आदेश पहले गौडीय मठ में कईयों को दिया जा चुका था संन्यासियों को, ब्रह्मचारियों को, परंतु आज यह आदेश एक गृहस्थ को दिया गया था जो कि पारिवारिक और व्यावसायिक विषयों में संलग्न था और थोड़ा बहुत मंदिर की सहायता कर पाता था। वह बस आज के किसी "पारिवारिक भक्त" के समान स्वयं को मानते हुए स्वयं कुछ नहीं देख पा रहे थे कि यह आदेश भला कैसे पूरा होगा। "हालांकि यह

बिल्कुल संभव नहीं था, लेकिन मैंने कभी असम्भवता के ऊपर विचार नहीं किया।" लेकिन फिर भी उन्होंने इसे बड़ी गंभीरता से लिया। यह उनके गुरु के द्वारा दिया गया आखिरी प्रत्यक्ष संदेश था। जिसकी वजह से इस आदेश की गंभीरता और भी बढ़ गई थी। (और चौदह वर्ष बाद भी अपने गुरु महाराज के द्वारा दिया गया यह संदेश उनके हृदय में गुंजायमान था जो उन्होंने अपनी पहली भेंट में उन्हें दिया था।) अत: उन्होंने इसे बहुत गंभीरता के साथ लिया हालांकि शुरू में उन्हें असफलता का सामना करना पड़ा। यह विश्वभर में भला किस प्रकार से होगा? लेकिन ऐसा हुआ— "कृष्ण की व्यवस्था से हुआ।"

साथ ही किसी और चीज की भी आवश्यकता थी। ऐसा क्या था जिसने कृष्ण को सारी व्यवस्था करने के लिए प्रेरित किया? शिष्य की गंभीरता। "यदि हम दृढ़ता के साथ गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं तो कृष्ण सभी प्रकार की सुविधा प्रदान करते हैं। यही रहस्य है"।[71] यही श्रील प्रभुपाद का दिव्य ज्ञान था।

फिर श्रील प्रभुपाद बताते हैं कि कृष्ण की व्यवस्था का कारण— यह रहस्य उन्होंने कैसे सीखा—

> हालांकि यह बिल्कुल संभव नहीं था। लेकिन मैंने कभी असंभवता के ऊपर विचार नहीं किया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भगवद गीता के निम्नलिखित श्लोक पर एक टीका में कहते हैं,

[71] रामेश्वर के साथ वार्तालाप में (वेदावेस : जनवरी 13, 1977 इलाहाबाद), श्रील प्रभुपाद बताते हैं कि किस प्रकार से उन्हें 'सारी सुविधाएं' प्राप्त हुई। मैंने यह सारा कार्य सत्तर वर्ष की आयु में प्रारंभ किया। तब उन्होंने (गुरु भाईयों ने) विचार किया "यह तो गृहस्थ है, यह पारिवारिक जीवन में वैसे ही ग्रस्त है, यह भला क्या कर पाएगा? (हंसते हैं) यह उनकी धारणा थी, परंतु मैंने किसी भी गुरु की आज्ञा अवहेलना नहीं की। गुरु महाराज ने मुझसे कहा था, परंतु मैं यह सोच रहा था, "यह कैसे किया जाए?" यह कैसे किया जाए? फिर मैंने सोचा क्योंकि पैसों की आवश्यकता होगी अत: मुझे एक धनवान व्यापारी बनना चाहिए। ऐसा मेरा विचार था, परंतु गुरु महाराज मुझसे कह रहे थे, "छोड़ दो सब मैं तुम्हें पैसे दूंगा। यह मैं नहीं समझ पा रहा था। मैं अपनी योजना बना रहा था। मेरी योजना भी गलत नहीं थी। मैं सोच रहा था कि कुछ पैसों की आवश्यकता होगी, अत: कुछ पैसे कमा लेता हूं, फिर शुरू करूंगा। और मेरे गुरु महाराज कह रहे थे अरे तुम यह पैसे अर्जित करने का प्रयास दोड़ दो, तुम बस पूर्णरूपेण आ जाओ, मैं तुम्हें पैसे दूंगा, अब मुझे सब समझ आ गया, परंतु क्योंकि मेरी इच्छा थी इसलिए मुझे मार्गदर्शन भी मिला।"

> 'वसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन' की शिष्य को अपने गुरु के आदेशों को अपना हृदय और जीवन मानते हुए, अपने लाभ और हानि के बारे में न सोचते हुए—उनका पालन करना चाहिए।

यह श्रील प्रभुपाद के लिए प्रेरणा: स्रोत था यह साक्षात्कार उन्हें तब हुआ था जब उन्होंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के द्वारा भगवद्गीता के 2.41 श्लोक पर टीका पढ़ी। अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने की यही कुंजी थी। यह उनके जीवन का आधार बनी—एकमात्र उनके सफलता का "एकमात्र रहस्य"। बार-बार श्रील प्रभुपाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस महत्त्वपूर्ण फल को इंगित करते थे।[72] उन्हें पूर्ण समर्पण की प्रेरणा मिली जिससे वह ठान पाए कि चाहे कुछ भी हो जाए मुझे अपने गुरु महाराज के आदेश का पालन हृदय से करना है। उस दृढ़ संकल्प के कारण ही कृष्ण उन्हें अमेरिका लेकर आए और फिर सफल भी किया।

> मैंने इसी भावना में थोड़ा सा प्रयास किया और भगवान ने सभी सुविधाएं दी हैं। आज यह स्थिति है कि मैं वृद्ध अवस्था होते हुए भी आपके इस देश में आ पाया हूं और आप सब भी इस कृष्ण भावना को बहुत गंभीरता से ले रहे हो और इसे समझने की कोशिश कर रहे हो। हमारे पास कुछ किताबें भी आ गई हैं। अब इस आंदोलन ने थोड़े बहुत पांव जमा लिए हैं।

अब श्रील प्रभुपाद अपने शिष्यों से निवेदन कर रहे हैं कि वह भी अपने गुरु के प्रति वैसी ही समर्पण की भावना व्यक्त करें जैसे की श्रील प्रभुपाद ने अपने गुरु महाराज के प्रति व्यक्त की थी।

---

[72] श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भगवद गीता के एक श्लोक व्यवसायात्मिका बुद्धि की टीका में बताते हैं कि किस प्रकार गुरु के निर्देशों का पालन करना चाहिए। शिष्य को गुरु के आदेशों से आसक्त होना चाहिए। सिर्फ यह कार्य करने मात्र से व्यक्ति कृष्ण के सम्मुख हो जाएगा। यदि कोई गुरु निर्देशित सिद्धांतों पर दृढ़ प्रतिज्ञ रहता है तो येन-केन प्रकारेण वह कृष्ण की संगति प्राप्त कर रहा है। चूंकि कृष्ण हृदय में है अत: वह निष्कपट शिष्य को अंदर से निर्देशन देते हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि शिष्य गुरु के मिशन को कार्यान्वित करने में गंभीरता से प्रयास करता है तो वह कृष्ण की वाणी और वपू का संग प्राप्त करता है। यही भगवान को प्रत्यक्ष रूप से देखने का एकमात्र रहस्य है। (श्रीमद् भागवतम् 4.28.51, तात्पर्य)

> अपने गुरु महाराज के तिरोभाव के दिन में आज भी उनकी इच्छा पूरी करने की कोशिश कर रहा हूँ, उसी तरह से मैं आप सभी से यह निवेदन करता हूँ आप सब भी इस इच्छा को मेरे माध्यम से पूरा कीजिए। मैं एक वृद्ध व्यक्ति हूँ और मेरा कभी भी देहांत हो सकता है और यह प्रकृति का नियम है। इस पर किसी का वश नहीं। अतः इसमें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं, इसलिये मेरी आप सभी से मेरे गुरु महाराज के तिरोभाव दिवस पर यह प्रार्थना है कि आंशिक रूप से भी यदि तुमने इस कृष्णभावनामृत आंदोलन को समझा है तब इसको आगे बढ़ाने का प्रयत्न करो।

"उनकी इच्छा पूरी करो" सिर्फ शब्दों का खेल हैं। हालांकि भावना यहाँ पर किसी के आदेश को पूरा करने की हैं और साथ ही यह एक औपचारिक और कानूनी दृष्टि से यह एक पुश्तैनी सम्पति के रूप में प्राप्त हुआ हैं। अपने गुरु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर के आदेश को पूरा करने के स्वीकृति के द्वारा उन्होंने अपने गुरु से कृष्णभावनामृत के प्रचार हेतु अध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त की। इस वचन को पूरा करने का निवेदन मैं आप सबसे भी करता हूँ। मैं एक वृद्ध व्यक्ति हूँ। अपनी इस आदेश के द्वारा श्रील प्रभुपाद ने हमें उनका उत्तराधिकारी बना दिया है। इसीलिये अपने कृपा स्वरूप जो आदेश श्रील प्रभुपाद हमें दे रहे हैं यदि हम इसे स्वीकार करते हैं तो हमें भी लोगों को कृष्ण के श्री चरणों में पहुंचाने की शक्ति प्राप्त हो जाएगी।

"इस वचन को पूरा करने का निवेदन मैं आप सबसे भी करता हूँ। यह एक अद्‌भुत वाक्य है। यह अध्यात्मिक शक्ति से हमें संचारित करने का माध्यम है, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि श्रील प्रभुपाद शक्ति से आवेशित थे।" तब श्रील प्रभुपाद बताते है कि वह क्या आदेश था–

> आंशिक रूप से भी यदि तुमने इस कृष्णभावनामृत आंदोलन को समझा है। इसको आगे बढ़ाने का प्रयत्न करो। आज समाज में इस भावना की बहुत आवश्यकता है। जैसा कि हम प्रत्येक दिन भक्तों से प्रार्थना करते हैं।

वांञ्छा कल्पतरुभ्यश्च, कृपा-सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो, वैष्णभ्यो नमो नमः।।

वैष्णव का जीवन परोपकार के कार्य के प्रति समर्पित होता है। आप सब ईसाई धर्म से हैं और आप जानते हैं कि ईसा मसीहा ने कहा था कि आप सबसे पापों के कारण उन्हें बलिदान देना पड़ा। यह होता है एक भक्त का दृढ़ निश्चय होता है। भक्त स्वयं के आराम की परवाह नहीं करते। वह कृष्ण भगवान से प्रेम करते हैं इसीलिए वह सभी जीवात्माओं से भी प्रेम करते हैं क्योंकि वह सभी जीवात्माओं को कृष्ण से सम्बंधित देखते हैं। इस कृष्णभावनामृत आंदोलन का उद्देश्य वैष्णव बनना और मनुष्य सभ्यता का दुख अनुभव करने के लिए है।

अतः आदेशानुसार "इसको आगे बढ़ाने का प्रयत्न करो।" को दोबारा समझा जा सकता है "वैष्णव बनना और मनुष्य सभ्यता का दुख अनुभव करने के लिए है" के शब्दों के रूप में।

श्रील प्रभुपाद ने इसे अपने हृदय से स्वीकार किया, जैसा कि एक वैष्णव गीत में बताया गया है—

"गुरु मुख पद्म वाक्य चितेते कोरिया ऐक्य,
आर न करिह मने आशा"

"अपने हृदय को गुरु के आदेशों में सम्माहित कर लो और किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं करो।"

श्रील प्रभुपाद की सफलता इन दिव्य निर्देशों में निहित अध्यात्मिक शक्ति होने का प्रमाण है। और भी कई अन्य जनों को भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद के द्वारा यह आदेश मिला, लेकिन "व्यवसायात्मिका बुद्धि" का उदाहरण स्वरूप केवल प्रभुपाद ही हुए।

इस प्रकार श्रील प्रभुपाद ने एक अद्वितीय संस्था का उद्घाटन किया जिसे कि व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से हम इस बात का साक्षात्कार कर सकते हैं—एक ऐसा साक्षात्कार जो निश्चित और अपराजित रूप

से भव्यप्रेम को कष्टों से ग्रस्त जनमानस पहुँचा सकता है।

कष्टों से ग्रस्त जनमानस : श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर से प्राप्त विरासत में प्राप्त यह मानव सभ्यता के कष्ट को दूर करने की भावना इतनी तीव्र और प्रमुख है कि हमें भौतिक, व्यक्तिगत, आर्थिक, स्थूल संगठित—सभी प्रकार के प्रसाधनों का प्रयोग इसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने में लगा देना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने इसे कार्यान्वित करने के लिए एक सुगठित संस्था करने की योजना का आविष्कार किया। जहाँ पर स्वयंसेवी भक्त साथ मिलकर के सहयोग देते हुए पूरी एकाग्रता के साथ आगे बढ़ेंगे तो उनकी शक्ति कई गुना बढ़ जाएगी।

यदि कोई संस्था ऐसा कर पाने में पूरी एकाग्रता और दृढ़ता के साथ कार्यशील हो सकती है तो उसका एक निश्चित रूप बहुत आवश्यक है। इसीलिए श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर ने एक-एक ऐसी संस्था का विचार प्रस्तुत किया जिसमें आचार्य के बजाय भक्तों के निर्देशक समूह जिसे "गवर्निंग बॉडी कमीशन" का प्रस्ताव था। चूंकि गौडीय मठ इस बात को नहीं समझ पाए अत: श्रील प्रभुपाद ने "निरर्थक" करार दिया।

निर्देशक समूह (बोर्ड ऑफ डिरेक्टर्स): एक आधुनिक और पाश्चात्य देशीय प्रबंधन की शैली है जिसमें मिलकर प्रबंधन और निरीक्षण किया जाता है। श्रील प्रभुपाद ने इसी शैली के विविध और सामान्य तौर पर ज्ञात प्रकरणों को अपनी संस्था में प्रयोग किया। जैसे कि वार्षिक गोष्ठी (मीटिंग), मतदान के द्वारा संकल्प धारण करना, संसदीय कार्यप्रणाली से सम्बंधित नियम (रॉबर्ट रूल के अनुसार), सचिव के द्वारा चर्चा के मुख्य बिंदुओं का लेखन।

किसी संस्था में "एक प्रामाणिक आचार्य" का होना एक पौराणिक, आधारभूत और स्वाभाविक विशेषता होती है। भारतीय सभ्यता में ऐसे मानक सिद्धांत काफी प्रचलित हैं जिसमें संन्यासी और ब्रह्मचारी प्रमुख होते हैं।

जैसे-जैसे समय बितता है एक सक्षम, आकर्षक और प्रभावशाली नेता की अध्यक्षता में अनुयायीयों की भूमि, मंदिर, गृह, धन इत्यादि भी धीरे-धीरे बढ़ते हैं और ऐसी स्थिति में उसका अध्यात्मिक रूप से होना अत्यंत आवश्यक हो

जाता है ताकि वह धन, पदवी, यश की तृष्णाओं के कारण मार्गभ्रष्ट न हो। साथ ही अयोग्य व्यक्ति सम्पति का दुरुपयोग करने हेतु आकर्षित हो सकते हैं—हालांकि उसमें इनके प्रति उदासीन होना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में कपट, दोषारोपण, पीठ-पीछे आक्रोश, अनुचित अदृश्य कार्य इत्यादि क्लेश स्वाभाविक रूप स्वीकृति प्राप्त कर लेता है।

आज हमारी संस्था पूरी तरह से स्थिर है, यदि कोई असाधारण नेतृत्व नहीं भी होता तो भी संस्था चलती रहेगी और यदि दो या अधिक असाधाारण नेता आ भी जाते हैं तो उन्हें समायोजित करने में कोई समस्या नहीं जाएगी। बोर्ड होने के कारण ऐसे असाधारण नेताओं की संख्या जितनी अधिक हो उतना ही अच्छा। इसके विपरीत यदि कोई एक व्यक्ति की संस्था में फूट पड़ जाएगी।

अत: भक्तों का समूह जो कि एक बोर्ड के रूप में होगा—"एक आचार्य" नीति के मुकाबले बोर्ड व्यवस्था अधिक स्थिर, मजबूत और कई अधिक लचीला है, परंतु यदि कोई विशिष्ट रूप से सशक्त प्रचारक—जिसे हम एक नित्य सिद्ध आचार्य मानकर चलें—बोर्ड में आ जाता है तो क्या होगा? क्या उससे सब कुछ बिखर जाने का भय होगा? नहीं यदि कोई कृष्ण भावना में इतना बढ़ा-चढ़ा व्यक्ति बोर्ड में आता है तो वह श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों के प्रति सहयोगपूर्ण सेवा का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करेगा और अपनी उपस्थिति से बोर्ड को और अधिक सशक्त बनाएगा।

हमारी मुख्य चुनौती

श्रील प्रभुपाद ने इस्कॉन की संरचना इस प्रकार की, १९७० में जी.बी.सी. का गठन किया और उसकी क्रमिक अभिव्यक्ति एवं विकास की देखभाल की। यह कह कर की उन्हें इस्कॉन में हजारो-हजारो आध्यात्मिक गुरु चाहिए। उन्होंने यह लक्षित किया कि गुरु शिष्य संबंध इस्कॉन की एकीकृत संस्था में जी.बी.सी. के निर्देशन में हो। इस तरह की संस्था में अनेक गुरु, अन्य नेताओं और व्यवस्थापको के साथ मिलकर ठोस बल के साथ कार्य कर सकें

कई सैकड़ों गुरु: न्यूयॉर्क में दिए गए अगस्त 17, 1966 भगवद गीता के 4.34-38 श्लोक पर प्रवचन देते हुए श्रील प्रभुपाद ने कहा—

"गुरु बनने में कोई बाधा नहीं है, कोई भी गुरु बन सकता है यदि वह कृष्ण तत्व का ज्ञाता हो तो और कृष्ण तत्व का ज्ञान भगवद गीता में निहित है। कोई भी जो पूर्ण रूप से जानता हो तो वह गुरु बन सकता है। अत: हमें आज कैन सैकड़ों गुरुजनों की आवश्यकता है तो कि इस कृष्ण तत्व के ज्ञान को समझ चुके हैं। इसलिए हमने इस संस्था का निर्माण किया है ताकि सभी सच्ची और निष्कपट जीवात्माएं गुरु बनकर के इस दिव्य विज्ञान का वितरण पूरे विश्व भर में कर सकें।"

श्रील प्रभुपाद ने अपनी अपेक्षाएँ तुष्ट कृष्ण को इस प्रकार व्यक्त की (वेदाबेस, पत्राचार दिसंबर 2, 1975)

हर विद्यार्थी भक्त से मेरी यह आशा है कि वह आचार्य बनें। आचार्य का अर्थ है जो कि शास्त्रों के निर्देशों का स्वयं भी पालन करता हो और अन्यों को भी उनका प्रशिक्षण दे।

स्वयं को भी सख्ती से साथ प्रशिक्षित करो और तब तुम सभी प्रामाणिक गुरु बन सकते हो और इसी सिद्धांत पर कई शिष्य स्वीकार कर सकते हो, लेकिन शिष्टाचार की दृष्टि से अपने गुरु की उपस्थिति में शिष्य सभी को अपने गुरु के शरण में लेकर आता है और गुरु के तिरोभाव या अनुपस्थिति में अनगिनत शिष्य स्वीकार कर सकता है। यह ही गुरु परम्परा का नियम है। मैं चाहता हूं कि मेरे शिष्य प्रमाणिक गुरु बनें और कृष्ण भावना का प्रचार प्रसार विस्तृत रूप से करें जिससे मैं और कृष्ण बहुत प्रसन्न होंगे।"

श्रील प्रभुपाद ने इस बात की चर्चा और भी कई अवसरों पर की थी जिसमें कई सैकड़ों गुरुओं की आवश्यकता पर जोर दिया और "सभी शिष्य" भक्तों को इसमें खरा उतरने का प्रोत्साहन दिया गया। श्रील प्रभुपाद चाहते थे कि भक्त हमेशा इस्कॉन में ही रहे इसलिए उन्होंने सभी भक्तों को आपस में अपने भौतिक और अध्यात्मिक क्षमताओं के साथ सहयोग देने का प्रोत्साहन दिया। यदि हम प्रचार के कार्य को सहयोग की भावना, उचित प्रबंध के साथ

करेंगे तो हम अपनी व्यक्तिगत क्षमता का अलग-अलग योग करने से कई कहीं अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर पांएगें।

और क्यों नहीं—हमारी विधि ही है संकीर्तन (सम-कीर्तन)—सिर्फ कीर्तन नहीं। यहां 'सम' का अर्थ सिर्फ 'संग' ही नहीं है अपितु साथ ही गहराई, तीव्रता और पूर्णता भी है—का वास्तविक साक्षात्कार करना आवश्यक है।

जब तक प्रभुपाद अकेले आचार्य व दीक्षा गुरु के रूप में उपस्थित थे तब तक संस्था का ढांचा आवश्यक रूप से प्राथमिक आकर में ही रहा, जैसे एक शिशु अपनी माँ के गर्भ में होता है, उसका आकार व कार्य पूरी तरह से नहीं थे। प्रभुपाद की प्रकट उपस्थिति के दौरान, परस्थितियों के अनुसार, गवर्निंग बॉडी कमीशन स्पष्ट रूप से मुख्य प्रबंधक प्राधिकरण के रूप में पूर्ण भूमिका नहीं ग्रहण कर पाई व केवल प्रभुपाद ही गुरु रहे। इसलिये पूरित कार्यों को फलीभूत होने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी।

फलस्वरूप प्रभुपाद ने अपने जाने के बाद हमारे लिए स्पष्ट तौर पर इस्कॉन के रूप व कार्यों को संसार में प्रभावशाली तौर पर क्रियान्वित करने का काम छोड़ा। एक प्रमुख चुनौती थी, गुरु-शिष्य के सम्बंध को एकीकृत करना जो व्यक्ति के गुरु के लिए गहरी निष्ठा व प्रतिबद्धता की मांग करती है व समाज के भीतर निश्चित तौर पर उच्च गहरी व सभी को शामिल करके सहयोग की निष्ठा। यह वफादारी हमारी साझी निष्ठा है। यह निष्ठा साबित होती है यदि हम इस संस्था में जो हमें विरासत में मिली उनके द्वारा एक दूसरे के सहयोग के व्यवहार का पालन करें, ताकि हम उनकी आंतरिक इच्छा को पूरा कर पाएं।

एक दूसरे के साथ हमारा सहयोग : इस सहयोग की नींव है प्रेम। श्रील प्रभुपाद बोले, एक पूरा आदेश का पालन कर रहा हूँ, इसलिए नहीं कि मैं कोई विशेष व्यक्ति हूँ।

> बल्कि इसलिए कि प्रेम है। प्रेम के बिना ऐसा नहीं कर सकते। तुम्हारे भीतर मेरे लिए थोड़ा-सा प्रेम है, इसलिए तुम मेरे आदेशों का पालन कर रहे हो। यह संभव नहीं हैं मैं भी ऐसा नहीं कर

सकता। तुम विदेशी हो, अमेरिकन हो, मैं दूसरे देश से आया हूँ, मेरा कोई अकाउंट नहीं है। मैं तुम्हें कोई आदेश नहीं दे सकता, तुम यह कार्य करो नहीं तो मैं तुम्हें दंडित करूंगा, लेकिन यह प्रेम का सम्बंध है, मैं तुम्हें दंडित करने के लिए सक्षम हो जाता हूँ और तुम भी हर परिस्थिति में मेरा पालन करते हो, केवल प्रेम के बुनियादी सिद्धांत के कारण। हमारा दर्शन ही प्रेम है।[73]

श्रील प्रभुपाद ने मई 23, 1977 को प्रेम की परीक्षा का मापदंड रखा। श्रील तमाल कृष्ण द्वारा उद्धृत।

श्रील प्रभुपाद ने जोर देते हुए कहा—"आप सबके प्रेम की परीक्षा इस बात से होगी कि आप मेरे तिरोभाव के बाद इस संस्था को कैसे संभालते हो। हमारे पास वैभव भी है और सामान्य जनता हमारे सिद्धांत का गुरुत्व भी समझ रही हैं। इसे बनाए रखना है। गौडीय मठ की तरह नहीं कि गुरु का तिरोभाव के बाद स्वयं प्रतिष्ठित आचार्य प्रकट हो गए।"[74]

श्रील भक्तिचारू स्वामी भी वहीं उपस्थित थे जब श्रील प्रभुपाद ने यह वचन कहे थे। वह स्मरण करते हैं—

श्रील प्रभुपाद जब अपने आखिरी दिनों में जब वृंदावन में थे तब श्रील तमाल कृष्ण महाराज श्रील प्रभुपाद को पत्रों को पढ़कर सुनाया करते थे और श्रील प्रभुपाद उन पत्रों के उत्तर लिखवाया

---

[73] वेदाबेस प्रवचन : सिद्धांत कि चर्चा, श्यामसुंदर के साथ चर्चा : आर्थर शोपेन्हुवर

[74] श्रील प्रभुपाद लीलामृत में, श्रील सत्स्वरूप दास गोस्वामी इसी से मिलता-जुलता व्याख्यान बताते हैं जहां श्रील प्रभुपाद ने कहा, "मेरे तिरोधान होने के बाद तुम सब किस प्रकार इस संस्था को संभालते हो, इसी से तुम्हारा प्रेम का पता चलेगा।" (श्रील प्रभुपाद लीलामृत 6.313)। जहाँ तक कि दो रूपांतरणों की बात है, इस संदर्भ में श्रील सत्स्वरूप दास गोस्वामी बतलाते हैं, "मैंने यह व्याख्यान श्रील तमाल कृष्ण महाराज से सुना था और इसे यथारूप प्रस्तुत कर दिया। श्रील तमाल कृष्ण महाराज ने भी अपनी 'टी.के.जी. डायेरी' में इससे हल्का-सा अलग वृत्तांत लिखा है, लेकिन अर्थ वही है "श्रीमान बदरी नारायण दास के द्वारा इलेक्ट्रॉनिक फोरम "GBC.Discussions@pamho.net पर 21 जून, 2013 को प्रकाशित।"

> करते थे और उन पर कभी-कभी टिप्पणी भी किया करते थे। एक बार किसी भक्त ने अपने पत्र में लिखा कि अपनी दीर्घायु श्रील प्रभुपाद को अर्पित करना चाहता है ताकि श्रील प्रभुपाद कुछ समय और इस धराधाम पर रह सकें। यह बहुत ही मधुर और भावनाओं से भरा पत्र था। हालांकि श्रील प्रभुपाद की इस पत्र के प्रति प्रतिक्रिया बहुत असामान्य थी और प्रेम की परीक्षा के तौर पर उन्होंने कहा कि उनके जाने के बाद हम सब किस प्रकार से सहयोग की भावना के साथ इस मिशन को आगे बढ़ाते हैं इससे प्रेम की वास्तविकता पता चलेगी।
>
> इस घटना का मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुझे समझ में आ गया था कि श्रील प्रभुपाद के प्रति वास्तविक प्रेम को इस्कॉन अन्य भक्तों का साथ सहयोग देकर जो कि श्रील प्रभुपाद के मिशन को इतनी गंभीरता के साथ आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं—अभिव्यक्त कर सकता हूँ।[75]

अपने आखिरी दिनों में श्रील प्रभुपाद ने हमारे हृदय के सच्चे उद्गारों से भी अधिक बाध्य करने वाला प्रेम का प्रमाण मांग लिया था। यह ही वास्तव में उन्हें स्वीकार्य होगा। उनके धराधाम से जाने के बाद, हम आपस में किस प्रकार से मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग देते हैं।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा दिया गया मापदंड—मात्र प्रबल शब्दों से भी अधिक है—यह तो वाणी सेवा का निचोड़ प्रस्तुत करता है—जिसके द्वारा हम श्रील प्रभुपाद का संग सदैव कर सकते हैं।

संकीर्तन का एक महत्त्वपूर्ण अर्थ है—सहयोग देते हुए कृष्णभावना का प्रचार करना। श्रील प्रभुपाद ने अद्भुत रूप से इसकी व्याख्या की है।

> इसका तात्पर्य यह है कि यहाँ तक भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु जो कि स्वयं भगवान हैं, स्वयं श्रीकृष्ण— वह भी स्वयं को इस कार्य को कर पाने में अकेला और अक्षम पाते हैं। उनका ऐसा

[75] श्रील भक्तिचारू स्वामी द्वारा जून 21, 2013 को GBC.Discussions@pamho.net पर प्रकाशित

> मानना था। तो यह स्थिति है। क्योंकि आप सभी सहयोग दे रहे हो और श्रेय मुझे मिल रहा है। नहीं तो भला मैं अकेला क्या कर लेता? एकाकी आमार नहीं पाय बल। श्री चैतन्य महाप्रभु हमारा सहयोग चाहते हैं वह तो भगवान हैं। अत: सहयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। किसी भी व्यक्ति को यह नहीं सोचना चाहिए—"मेरे पास तो बहुत सारी योग्यता है, मैं कर लूंगा नहीं"। सिर्फ सहयोग की भावना से हम कई बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न कर सकते हैं—"संगठन में रतन हैं, टूटे तो पतन है" यही हमारा...अत: सशक्त बनिए और कृष्णभावनामृत को आगे बढ़ाइये। कृष्ण सहायता करेंगे। कृष्ण तो सबसे शक्तिशाली है, लेकिन फिर भी हमें एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। संकीर्तन, संकीर्तन का अर्थ है कई सारे व्यक्ति एक साथ मिलकर के कीर्तन करें। वह संकीर्तन है, अन्यथा कीर्तन है। बहुतभिर मिलित्वा किर्तयतीती संकीर्तनम्—"बहु": बहु का अर्थ है कई-कई सारे एक साथ मिलकर—यह है चैतन्य महाप्रभु का मिशन—एक साथ मिलकर।[76]

दो प्रभावशाली नेताओं के इस्कॉन से जाने पर श्रील प्रभुपाद ने बभ्रु दास को दिसंबर 9, 1973 को यह दिशानिर्देश दिये—यह हमारे हृदय में हमेशा रहे, इसकी प्रार्थना करते हैं—

> कृष्ण की कृपा से आज हमारा इस्कॉन प्रचुर मात्रा में एक सुदृढ़ संरचना ले चुका है और हम सब एक परिवार हैं। हो सकता है कभी थोड़ा बहुत मन मुटाव हो जाए लेकिन हमें छोड़ के कभी नहीं जाना चाहिए। ऐसे मन-मुटाव को सहयोग की भावना, सहिष्णुता

[76] वेदाबेस: राधा दामोदर संकीर्तन पार्टी के साथ वार्तालाप, मार्च 16, 1976, मायापुर, श्रील प्रभुपाद श्री चैतन्य चरितामृत के आदि लीला के 9.34 में श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं, मैं ही अकेला माली हूँ, परंतु मैं स्वयं कितनी जगह जाउँगा? मैं भला कितने फल इकट्ठे करूँगा और वितरित करूँगा। इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद इंगित करते हैं, "यहाँ चैतन्य महाप्रभु यही संकेत दे रहे हैं कि हरे कृष्ण महामंत्र का वितरण सामूहिक शक्ति के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए।"

और परिपक्वता द्वारा सुलझाया जा सकता है। अतः मेरा तुमसे यह अनुरोध है कि तुम हमेशा भक्तों के संग में रहो और साथ मिलकर कार्य करो। श्रील प्रभुपाद के प्रति प्रेम व्यक्त करने की सबसे व्यावहारिक विधि है आपस में सहयोग की भावना रखते हुए इस संकीर्तन को फैलाना, न कि अलग-अलग टुकड़ों में बंटकर मार्ग भ्रष्ट होना।

हमने यह भी अनुभव किया कि जोनल आचार्य (क्षेत्र सीमित आचार्य) के माध्यम से सारे जगत को हमने जब अलग-अलग क्षेत्रों में बांट दिया, लेकिन हमने यह भी पाया कि इस्कॉन की एकता विषमता में पड़ गई। वह पद्धति अब कार्यशील नहीं है। अतः हमें श्रील प्रभुपाद की इच्छा अनुसार संस्था की अखंडता को और आगे लेकर जाना होगा।

हमें आगे जाने की आवश्यकता है: आज भी इस्कॉन में श्रील प्रभुपाद के अनुगत होकर सहयोग की संसकृति लाने का अधिकाधिक प्रयास चल रहा है। जब यह संस्कृतिक रूप से स्थापित हो जाएगा—तब हर एक सदस्य ऊपर से लेकर नीचे तक इसका हिस्सा होगा। यह कृष्णभावनामृत आंदोलन का इतना महत्त्वपूर्ण हिस्सा है यह एक छोटी से छोटी क्रिया में भी समाया हुआ है। शिशु अपनी मां के दुग्ध में इसका पान करते हैं। यह सर्वव्यापक है। हम श्रील प्रभुपाद का अनंत रूप से संग को प्राप्त कर सकते हैं और साथ ही उनका भी जिन्हें श्रील प्रभुपाद का निजी संग मिला हुआ है।

एक रोचक बात—दो ऐसे इस्कॉन विरोधी आंदोलन भी हैं जो कि स्वयं को वास्तविक इस्कॉन बतलाते हैं। इन्होंने एक या अधिक श्रील प्रभुपाद के दिए गए अंगों का तिरस्कार किया है—ऋत्विक प्रणाली वास्तविक गुरु को स्वीकार नहीं करती और उन्हें सिर्फ संस्थापन सम्बंधी अधीक्षक ही मानती है और दूसरी ओर जी.बी.सी. को हटाकर किसी प्रमुख संन्यासी के अनुयायी होकर उन्हीं को सर्वेसर्वा आचार्य मानती है।

एक या अधिक अंगों का तिरस्कार : जैसे कि हम गौडीय मठ से साफ-साफ सीखते हैं कि इन बातों को सच साबित करना एक चुनौती है। इन फूट पड़े या भटके हुए खंडित समुदायों को ठीक वैसे ही देखना चाहिए जैसा

कि श्रील प्रभुपाद में खंडित गौडीय मठ को देखा—अर्थात इन्हें मुख्य मार्ग से भटका हुआ मानना—और साथ ही उदारता, शुभचिंतक भाव और अथक धैर्य के साथ—व्यवहार करना।

इस्कॉन को दोनों ही घटकों का पालन-पोषण करना है—इस्कॉन और जी.बी.सी. के प्रति एक सामजस्य की भावना से ओत-प्रोत वफादारी की भावना और दूसरा प्रामाणिक शिक्षा के अनुसार गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को इस्कॉन में संजोकर रखना। हमें यह समझना है कि किस प्रकार से किसी प्रकार का कोई परस्पर विरोधी या मतभेदी विचार नहीं है। हमें बल्कि यह समझना है कि किस प्रकार से यह एक दूसरे को मजबूत करने और परस्पर सहारा देने के लिए है।

एक निर्णायक अंग जो कि सिद्धांत को गहरे से समझाता है। वह है श्रील प्रभुपाद की वास्तविक स्थिति को ज्ञान और विज्ञान के दृष्टिकोण से स्थापित करेगा। श्रील प्रभुपाद इस्कॉन की एकता के प्रतिरूप प्रतिनिधि हैं। चाहे तो किसी भी शिक्षा गुरु या दीक्षा गुरु की सेवा करे, लेकिन श्रील प्रभुपाद की अद्वितीय स्थिति को अपने हृदय में अनुभव करें। प्रकट गुरुजनों का अप्रकट गुरुओं से अधिक प्रभाव होता है, क्योंकि श्रील प्रभुपाद अब अप्रकट हो चुके हैं अतः उनके वपु रूप में अनुपस्थिति को हम उनकी वाणी से और गहरा सम्बंध बनाकर पूरा हो सकता है। (जैसा कि श्रील प्रभुपाद ने स्वयं भी सिखाया।)

श्रील प्रभुपाद की स्थिति को समझना : ऐसी आशा की जाती कि यह दस्तावेज उन कई दस्तावेजों में से एक है जो कि श्रील प्रभुपाद की संस्थापकचार्य के रूप में स्थिति को और अधिक गहरा, गंभीर बनाते हुए हमें उनके प्रति और समर्पित बनाएगा।

इस बात का साक्षात्कार करना बहुत आवश्यक कि श्रील प्रभुपाद की यह स्थिति इस्कॉन के रोम-रोम में सांस्कृतिक रूप में समाज में श्रील प्रभुपाद की स्थिति और उपस्थिति कभी भी समाप्त नहीं होगी चाहे उनको व्यक्तिगत रूप से जानने वाले सभी भक्त उनके साथ भगवद् धाम ही क्यों न चले जाएँ।

श्रील प्रभुपाद की स्थिति हमेशा बनी रहेगी। विशेषज्ञों के अनुसार संस्कृति वह एक ऐसा तत्व होता है जो कि एक पीढ़ी अगली पीढ़ी को देती है और सबसे महानतम उपहार तो हमारी संस्था में एक पीढ़ी अगली पीढ़ी को दे सकती है—वह है श्रील प्रभुपाद।

परिणाम:

श्रील प्रभुपाद की संस्थापकाचार्य के रूप में अद्वितीय स्थिति को स्थापित करके निम्नलिखित निष्कर्ष निकालेंगे:

(१) पीढ़ी दर पीढ़ी को श्रील प्रभुपाद की विशेष कृपा प्राप्त होगी। भगवद् धाम जाने का जो मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया वह अधिक से अधिक लोगों को उपलब्ध होगा।

(२) श्रील प्रभुपाद को वाणी रूप में उपस्थित मानकर उन्हें हम शिक्षा गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं, ताकि इस्कॉन के सभी शिक्षक, प्रगति के हर स्तर पर प्रामाणिक रूप से श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं को सभी के सही मार्गदर्शन शरण और रक्षा हेतु प्रस्तुत कर पाएंगे।

(३) श्रील प्रभुपाद की उपस्थिति से इस्कॉन की एकता और अस्तित्व की हमेशा रक्षा होगी।

(४) इस्कॉन की शिक्षाएं हर काल और परिस्थिति में यथारूप बनी रहेंगी।

(५) श्रील प्रभुपाद की विशिष्ट शक्ति जिसके द्वारा वह कृष्ण ाभावनामृत का प्रखर रूप से प्रचार कर पाए—उसे भी हम सुरक्षित रख पाएंगे और उसका विकास भी कर पाएंगे।

(६) श्रील प्रभुपाद के द्वारा दिए गए ग्रन्थ हमारे लिए हमेशा मुख्य ज्ञान का स्त्रोत रहेंगे जिससे हम अंतदृष्टि और दिशानिर्देश प्राप्त करते रहेगें और विकास करते रहेगें।

(७) श्रील प्रभुपाद की दृष्टि के द्वारा भावी पीढ़ी भी पूर्ववर्ती आचार्यों को देख पाने के लिए सक्षम हो जाएगी।

निम्नलिखित भक्तों के सहयोग से इस ग्रंथ का हिन्दी भाषा में प्रकाशन संभव हो सका।

सर्वासाक्षी दास

ऋषि कुमार दास

नन्दगोपाल जीवन दास

अनुत्तम हरि दास

सर्वपालक दास

वृन्दावन विनोद दास

अमोघ लीला दास

परमात्मा चैत्यगुरु दास

बालगोपाल दास

रासरति गौरांगी देवी दासी

प्राणबन्धु गिरीधारी दास

ध्रुवनारायण दास

भक्त ध्रुव